हिन्दी काव्य-कुसुमांजलि

हिन्दी काव्य-कुसुमांजली

सम्पादक

डॉ० दशरथ ओझा

एम० ए० पी-एच्० डी०

वसन्त प्रकाशन, दिल्ली

प्रथम संस्करण : 1972

मूल्य : 3.50

प्रकाशक : वसन्त प्रकाशन
ए-91, सूर्यनगर, गाजियाबाद

मुद्रक : राज कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-32

भूमिका

राष्ट्रभाषा हिन्दी के श्रेष्ठ प्राचीन और आधुनिक कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का यह संकलन विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों को हिन्दी-साहित्य का आरम्भिक परिचय प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है। यह ध्यान रखा गया है कि हिन्दी-काव्यधारा का विकास-क्रम इससे उदाहृत हो सके और साथ ही भक्तिप्रधान, वीर-रसात्मक, राष्ट्रीयतापरक, प्रकृतिमूलक, चरित्रोत्कर्षक आदि सभी प्रकार की कविता का प्रतिनिधित्व भी हो। संकलन तैयार करने में छात्रों की अस्फुट ग्रहणशक्ति और उनके भाषा ज्ञान की सीमाओं का विचार सर्वोपरि रहा है।

प्राचीन कविता में पाये जाने वाले पाठान्तर को छात्रों के लिए अनावश्यक समझकर छोड़ दिया गया है। प्रचलित और स्वीकृत पाठ ही प्रस्तुत किये गये हैं।

संकलित कविताओं के अर्थ के सम्यक् स्फुरण के लिए मुखटिप्पणी के रूप में सन्दर्भात्मक परिचय देकर कविता के मूल भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। संकलन के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ और कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दे देने से संकलन की छात्रोपयोगिता बढ़ गयी है।

संकलन में आयी हुई रचनाओं के लिए हम सम्बद्ध कवियों के आभारी हैं।

—सम्पादक

क्रम

हिन्दी काव्य का विकास vii-xxiv

१. कबीर
- साखी ... १

२. सूरदास
- विनय के पद ... ५
- बाल लीला ... ६
- गोपी-विरह ... ६

३. तुलसीदास
- लक्ष्मण-परशुराम संवाद ... ११
- राम-चरित ... १७
- दैन्य-सामर्थ्य और आत्मबोध ... १६

४. रहीम
- दोहावली ... २१

५. रसखान
- सवैया ... २५

६. बिहारी
- दोहे ... २६

७. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
- यमुना-वर्णन ... ३४
- भाषा-ज्ञान ... ३६

८. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
- क्या से क्या ... ३८
- फूल और कांटा ... ४०
- आँख ... ४१

९. मैथिलीशरण गुप्त
- स्वर्गीय संगीत ... ४३
- भरत का क्षोभ ... ४६
- कला ... ४८
- मातृभूमि ... ४६

१०. माखनलाल चतुर्वेदी
- उलाहना ... ५२
- दूबों के दरबार में ... ५४
- उन्मूलित वृक्ष ... ५५

११. **जयशंकर 'प्रसाद'**

आत्म-कहानी ... ५६
गीत लहरी ... ५८
हमारा देश ... ५८

१२. **सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'**

ठूंठ ... ५९
सन्ध्या-सुन्दरी ... ६०
विधवा ... ६१
भिक्षुक ... ६३

१३. **सुमित्रानन्दन पन्त**

वसंत ... ६५
तप ... ६६
अवगाहन ... ६६
उद्‌बोधन ... ६७
भू-स्वर्ग ... ६८
स्वाधीनता चेतना ... ६९
गीत ... ७०

१४. **महादेवी वर्मा**

परिचय ... ७२
स्मृति ... ७३

१५. **सुभद्राकुमारी चौहान**

बचपन ... ७५
वीरों का वसंत ... ७६
झाँसी की रानी ... ७८

१५. **दिनकर**

स्वाधीन भारत की सेना ... ८६
चाँद और कवि ... ८८
हिमालय के प्रति ... ८९

१७. **बच्चन**

मधुशाला ... ९२
जो बीत गई ... ९६

१८. **आरसीप्रसाद सिंह**

जागरण शंख ... ९९
शब्दार्थ ... १०१
कवि-परिचय ... १११

हिन्दी-काव्य का विकास

कविता रसात्मक वाक्य है। जब विषय को रसात्मक रीति से व्यक्त किया जाता है, तब वाक्य का उन्मेष होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हृदय की मुक्तावस्था कहा है। इस प्रकार काव्य एक भावात्मक अभिव्यक्ति है। समय-समय पर काव्य में विविध प्रकार के साहित्यिक मनोभावों की अभिव्यक्ति की जाती है।

किसी कविता का अध्ययन करते समय हमें उपर्युक्त परिभाषित तत्त्वों को ध्यान में रखना उपयुक्त है। साथ ही साथ हमें देखना चाहिए कि कविता में कल्पना-तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व, भाव-तत्त्व तथा शैली-तत्त्व किस रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्रेष्ठ कविता में उपर्युक्त तत्त्वों का संयमित रूप अनिवार्य है। साथ ही साथ वर्ण्य विषय, भाषा, छन्द, अलंकार, शैली, रस आदि जैसे मूल गुणों की परख करना भी परम आवश्यक है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी काव्य के उद्भव और विकास का पर्यवेक्षण करते हुए समय-समय पर उद्बुद्ध और तिरोहित होने वाली साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी-काव्य-विकास को चार भागों में बाँटा है :—

१—आदिकाल (वीरगाथा-काल) १०५०-१३७५ वि० सं०

२—मध्यकाल—

पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) १३७५-१७०० वि०

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) १७००-१९०० वि०

३—आधुनिक काल (गद्यकाल) १९०० से अब तक
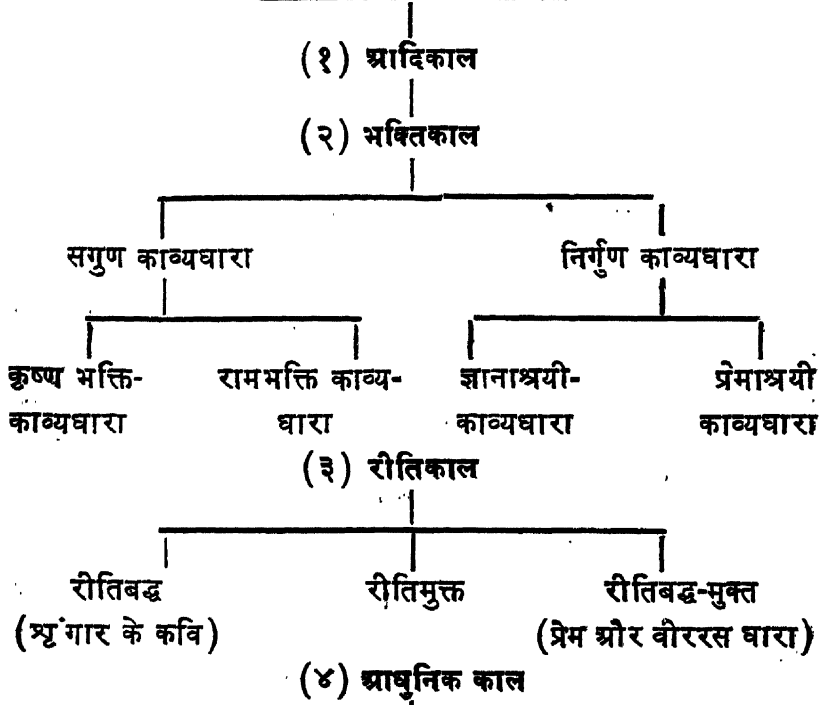
शुक्लजी ने जिस समय यह काल-विभाजन किया था, उस समय तक हिन्दी-काव्य की बहुत-सी सामग्री प्रकाश में नहीं आई थी किन्तु नामकरण और कुछ स्थापनाओं को छोड़कर शुक्लजी के काल-विभाजन को यत्किंचित् हेरफेर के साथ सभी आलोचकों ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। यदि सम्पूर्ण हिन्दी-काव्य की बाह्य रूपरेखा का परिचय प्राप्त करना हो तो ऊपर दिए गए चार्ट में उसे सुगमता से ग्रहण किया जा सकता है।

अब हम प्रत्येक काल की काव्यधारा का पृथक्-पृथक् परिचय प्राप्त करेंगे।

आदिकाल (वीरगाथा-काल)

(१०५०-१३७५ वि०)

१०५०-१३७५ वि० काव्ययुग को विद्वानों ने कितने ही नामों से पुकारा है। रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा-काल', महापण्डित राहुल सांकृत्यायन से 'सिद्ध-सामन्त-काल', डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'सिद्ध और चारण-काल' तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसी युग को 'आदिकाल' के नाम से पुकारा है। भाषा, प्रवृत्ति और समस्त तथ्यों के आधार पर इस युग को आदिकाल कहना उचित है। अब इस काल के लिए यही नाम सर्वस्वीकृत हो चुका है।

१०५०-१३७५ वि० का युग भारतीय इतिहास में विशृंखलता, अशांति और संघर्ष का युग रहा है। इस काल में भारतीय सामंत अपनी मान-मर्यादा और शौर्य-प्रदर्शन के लिए परस्पर युद्ध कर रहे थे। सम्मान और कन्या-अपहरण ये दोनों ही ऐसे कारण थे कि समस्त भारतीय सामंतीय शक्ति को इस प्रवृत्ति ने गृह-युद्धों के विशाल क्षेत्र में बरबाद होने के लिए धकेल दिया—उस काल के युद्ध का प्रेरक आदर्श था—

'जिह की बिटिया सुन्दर देखी,
ताही पै जाहि धरे हथियार।'

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारतीय राजनीतिक एकता जो खण्डित हुई उसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि छोटी-छोटी रियासतों में बंटी हुई भारतीय शक्ति आपसी मतभेद, झूठी आन और स्पर्धा में इतनी क्षीण हो गई कि वह बाहरी आक्रमणकारियों का सामना न कर सकी। परिणामतः भारतीय शासन-सूत्र विदेशी विजेताओं के हाथों में धीरे-धीरे चला गया।

भारतीय सामन्तों के यहाँ जो आश्रित कवि रहते थे उनकी काव्य-कला या तो अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करने में अथवा किसी नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में ही गई। हां, इतना अवश्य था कि इस काल के कवि

स्वयं भी युद्धस्थल में जाकर जूझते थे—अपनी अग्नि-वाणी से वीरों को प्रेरित करते थे। सब मिलाकर इस काल का कवि व्यापक दृष्टि से राष्ट्रहित-चिन्तन नहीं कर सका और अपने आश्रयदाताओं की कहीं-कहीं इतनी प्रशंसा कर बैठा कि इतिहासकारों को एक समस्या पैदा हो गई। इस काल की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१—खुमाण रासो—कवि का नाम और समय अनिश्चित
२—बीसलदेव रासो—नरपति नाल्ह (१२२५-१२४६ वि० सं०)
३—पृथ्वीराज रासो—कवि चन्द वरदाई (१२२५-१२४६ वि० सं०)
४—जयचंद प्रकाश—कवि भट्टकेदार (१२२४-१२४३ वि० सं०)
५—आल्हा—कवि जगनिक (१२३० वि० सं०)

इस काल की काव्यभाषा डिंगल है। इस काल में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों में काव्य-रचना हुई और मुख्य विषय युद्ध तथा प्रेम रहा। इस काल की कविता में मुख्यत: ऐसे छन्दों का प्रयोग हुआ जो वीर तथा शृंगार रस को व्यक्त करने में समर्थ हों—जैसे, दूहा, पद्धरि, तोमर, नाराच, छप्पय आदि।

भक्तिकाल

(सं० १३७५ से १७०० वि०)

मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। हिन्दू जनता पराजय का जीवन भोग रही थी, उसने यह समझ लिया था कि विजयी मुस्लिम शासकों से लोहा लेना अपने को सदा के लिए समाप्त कर देना होगा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय हिन्दू जनता ने पराजय की वेदना को भूलने के लिए अपनी भावनाएँ आध्यात्मिकता के रंग में डुबो दीं। कुछ विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भक्तिभाव का उदय हिन्दू जाति की पराजित और कुंठित मनोवृत्ति के कारण नहीं हुआ, अपितु भक्ति की धारा, जो दक्षिण में प्रवाहित हो रही थी, परिस्थितियों के प्रवाह में

उत्तर भारत में भी आकर फैल गई। कारण कुछ भी रहा हो परन्तु ४०० वर्ष का भक्तिकालीन काव्य हिन्दी कविता के इतिहास में स्वर्ण-युग है। यह वही काल है जिसमें कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीरां जैसे कवियों ने भक्तिकाव्य की रचना की और यह वही काल है कि जिसके साहित्य को लेकर हिन्दी जगत् संसार के सामने अपना मस्तक ऊँचा उठा सकता है। इन कवियों की वाणी में वह शक्ति थी कि यदि ये चाहते तो भारतीय जन-मानस को प्रेरित कर विदेशी शासकों से उसका संघर्ष भी करा सकते थे—परन्तु उन कवियों की दूरदर्शिता के कारण भारतीय जाति युद्ध की विभीषिका में न जाकर आध्यात्मिता के शांतिमय प्रवाह में बह गई।

इस काल में सैद्धान्तिक दृष्टि से दो प्रकार के कवि हुए—

१—निर्गुणवादी

२—सगुणवादी

इन दोनों काव्यधाराओं का परिचय हम पृथक्-पृथक् प्राप्त करेंगे।

निर्गुण काव्यधारा

निर्गुण काव्यधारा का सिद्धान्त था कि परमात्मता—जिसे प्राप्त करने के लिए हम साधना करते हैं, सगुण न होकर निर्गुण है। उसके सम्बन्ध में कबीर ने कहा भी था—

> जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
> पहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्व अनूप॥

किन्तु इस धारा में भी दो प्रकार के कवि हुए—

१—ज्ञानाश्रयी शाखा

२—प्रेमाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा—इस काव्यधारा का प्रेरणा-स्रोत नाथ सम्प्रदाय माना जाता है। वैसे भी भाषा को यदि दृष्टि में न रखें तो नाथ सम्प्रदाय और ज्ञानाश्रयी शाखा के सिद्धान्त एक जैसे हैं। मूर्तिपूजा, तन्त्रवाद का

विरोध, बहुदेववाद का विरोध आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के उद्देश्य रहे।

इस शाखा की कविता का साहित्यिक स्तर तो उच्च नहीं, भाषा भी खिचड़ी है किन्तु इसके साहित्य में जिन भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली वे काल-सापेक्ष और लोक-कल्याण की भावनाओं से प्रेरित थीं। इस शाखा के प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं—

कबीर, दादू, सुन्दरदास, रैदास, मलूकदास, पलटूदास, नानक, साहन, भीखा साहब, दयाबाई, सहजोबाई।

इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास हैं जिनका साहित्यिक परिचय यथास्थान दिया गया है।

प्रेमाश्रयी शाखा—इस शाखा को सूफी काव्यधारा भी कहते हैं। बताया जाता है कि इस शाखा का उदय फारस में हुआ था। भारतवर्ष में इस मत के कुछ संतों ने भारतीय और सूफी सिद्धान्तों को एक केन्द्र पर लाकर हिन्दू और मुस्लिम जनता के साम्प्रदायिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। इनका कथन है कि जीवन एक यात्रा है और उस यात्रा में परमात्मा की प्राप्ति प्रेम के माध्यम से ही हो सकती है। इन कवियों में मुस्लिम धर्म के एकेश्वरवाद, भारतीय अद्वैतवाद और नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अभूतपूर्व सामंजस्य है।

इस शाखा के सभी कवियों ने भारतीय प्रेम-कहानियों के माध्यम से अपने सिद्धान्तों का काव्यात्मक प्रचार किया। इनकी समस्त काव्य-कथाएँ लौकिक होते हुए भी आध्यात्मिक तथ्यों की प्रतीकात्मक व्याख्या करती हैं।

इस शाखा के कवियों ने मसनवी शैली में प्रेमगाथाओं की रचना की। इस समस्त काव्य की भाषा अवधी है और इन कवियों ने दोहा और चौपाइयों में काव्य लिखे हैं। इस शाखा के प्रमुख कवि और कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

१—मुल्ला दाऊद लिखित 'नूरक चंदा' या 'चन्दायन'

२—कुतबन कृत मृगावती

३—मंझन कृत मधुमालती

४—जायसी कृत पद्मावती

५—उस्मान चित्रावली

६—शेख नवी कृत ज्ञानदीप

७—काशिम शाह कृत हंस जवाहिर

८—नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावली

सगुणवादी काव्यधारा के अन्तर्गत दो काव्यधाराएँ प्रस्फुटित हुईं—

१—राम-काव्यधारा ।

२—कृष्ण-काव्यधारा ।

रामभक्ति शाखा—राम-भक्ति का प्रवर्त्तन रामानन्द ने किया। उन्होंने राम की विष्णु के रूप में प्रतिष्ठा की। यद्यपि रामानन्द से पूर्व अनेक वैष्णव भक्त हुए पर रामभक्ति की प्रतिष्ठा आचार्य रामानन्द ने ही की। ये 'श्री सम्प्रदाय' के प्रवर्त्तक रामानुजाचार्य के शिष्य थे। इन्होंने नारायण अथवा विष्णु के स्थान पर अवतारी राम की भक्ति पर बल दिया। कर्मकाण्ड की उपेक्षा कर इन्होंने भक्ति को उच्च स्थान दिया। इन्होंने ही राम और सीता की मर्यादापूर्ण भक्ति का प्रचार कर उत्तर भारत में वैष्णव धर्म की नींव डाली।

हिन्दी में तुलसीदास ने रामानन्द के सिद्धांतों को लेकर रामभक्ति का प्रचार किया। यों तो तुलसीदास से भी पूर्व दो अन्य राम-कवि भगवतदास तथा 'चंद' के नाम मिलते हैं पर राम-काव्य की परम्परा तुलसीदास के बाद ही चलती है। अतः तुलसीदास जी को ही राम-काव्य का प्रथम कवि कहना उचित प्रतीत होता है। उन्होंने वैष्णव धर्म के आदर्शों को प्रतिपादित कर सेवक-सेव्य भाव पर अधिक बल दिया और ज्ञान तथा कर्म से भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

इस शाखा के कवियों में प्रमुख हैं—तुलसीदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, लालादास, प्रियदास, कलानिधि।

सम्पूर्ण राम-साहित्य के अध्ययन से निम्नलिखित विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान जाता है—

१—रामकाव्य का वर्ण्य विषय विष्णु के राम रूप की भक्ति है। रामानन्द द्वारा प्रचारित विशिष्टाद्वैत के आधार पर इसका विकास हुआ।

२—समस्त राम-काव्य की रचना, दोहा, चौपाई में ही अधिक हुई। साथ ही साथ कुंडलियाँ, छप्पय, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर और त्रिभंगी छन्दों का भी कवियों ने प्रयोग किया।

३—समस्त राम-काव्य प्रधानतः अवधी भाषा में रचा गया। किन्तु अवधी के साथ-साथ ब्रजभाषा का प्रयोग भी यथेष्ठ रूप में हुआ।

४—राम-काव्य में नव रसों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ हुआ। किन्तु प्रधानतः शान्त और शृंगार रस की रही।

५—राम-काव्य में राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य तीनों गुणों की प्रतिष्ठा हुई।

६—राम-काव्य ने सामाजिक क्षेत्र में संयम, आदर्श और महान् जीवन मूल्यों का प्रतिपादन किया।

७—राम-काव्य ने मत मतान्तरों और सामाजिक क्षेत्रों में फैली विषमताओं का समन्वय रामकथा के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है।

८—राम काव्य में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों में रचना हुई। रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी हैं जिनका परिचय दिया गया है।

कृष्ण-भक्ति शाखा—मध्यकालीन समस्त कृष्ण-भक्ति काव्य का श्रेय वल्लभाचार्य को ही जाना चाहिए,क्योंकि उन्हीं के प्रचारित सिद्धांतों पर सूरदास तथा कृष्ण-भक्त कवियों ने रचना की। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् तथा गीता पर भाष्य लिखा और शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। कृष्ण को पुरुषोत्तम मानकर उसे पूर्ण ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। वल्लभाचार्य का मत जिसे दर्शन के क्षेत्र में शुद्धाद्वैत कहते हैं, भक्ति के

क्षेत्र में पुष्टिमार्ग कहलाता है। इसे प्रेम-लक्षणा भक्ति भी कहते हैं। इस भक्ति में प्रेम को ही महत्ता प्राप्त है। इस क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति के कई रूप प्रचलित हुए—वात्सल्य, माधुर्य, सख्य। कुछ ऐसे विशिष्ट भक्ति-आदर्श थे जिनका प्रचार कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों में प्रचुर हुआ।

वल्लभाचार्य के सुपुत्र स्वामी बिट्ठलनाथ ने कृष्ण-भक्ति के आठ कवियों पर कृष्ण-भक्ति-काव्य की विशिष्ट छाप लगाई, इसी कारण उन आठ कवियों को अष्टछाप के कवि कहते हैं। ये आठ कवि हैं—

सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत-स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास।

इस समस्त काव्यधारा में सूर का नाम उल्लेखनीय है। उनका परिचय भी यथास्थान दिया गया है, किन्तु इन अष्टछाप के कवियों को छोड़कर मीरा, रसखान का नाम भी महत्त्वपूर्ण है जिनका परिचय भी हमने दिया है।

कृष्णभक्ति-काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

१—कृष्ण-काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय कृष्ण की लीलाएं हैं। ये लीलाएं 'श्रीमद्भगवत' के दशम स्कन्द से ली गई हैं।

२—कृष्ण-भक्त कवियों ने अधिकतर गीतिकाव्य की शैली को स्वीकार किया है। उनके सम्पूर्ण पद गेय हैं और राम-रागिनियों के आधार पर लिखे गए हैं। कुछ कवियों ने रोला, दोहा आदि भी प्रयोग किया है। सूर ने स्वयं 'सूरसागर' में चौपाई छन्द का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है।

३—कृष्ण-काव्य की भाषा ब्रजभाषा है।

४—कृष्ण-काव्य में शृंगार, अद्भुत और शान्त रस प्रधान है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर इन कवियों ने श्रेष्ठ कविता की है।

५—कृष्ण-भक्त कवियों ने शृंगार के लौकिक रूप को आध्यात्मिक रूप दिया।

रीतिकाल

(१७००—१८०८)

कृष्ण-भक्ति-काव्य में जिस माधुर्य रस का परिपाक हुआ उसकी पवित्रता विक्रम की १७वीं शताब्दी में नष्ट होने लगी। कृष्ण-काव्य की अतिशय शृंगारिकता ने जन-मानस में वासना को प्रेरित कर दिया। उसका उत्तरदायित्व उत्तरकालीन कृष्ण-काव्य को है जिसमें राधा और कृष्ण के नाम को लेकर कृष्ण-भक्ति के कवियों ने अपनी लौकिक वासना को व्यक्त किया। इन समस्त शृंगारिक भावनाओं की परिणति रीतिकाल के कवियों में हुई। उनकी कविता का आदर्श हो गया :

"आगे के कवि समुझै तो कविताई है
न तु रधिका गुविंद के सुमिरन कौ बहानो है।"

रीतिकाल के उदय में जितना हाथ उत्तरकालीन कृष्ण-काव्य का है उतना ही उस काल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का भी। उस समय जहाँगीर के शासन में जो शान-शौकत, वैभव-विलास, सुख और शान्ति का साम्राज्य था उसका जनमानस पर वैसा ही प्रभाव पड़ा। बाहरी आक्रमण होने बन्द हो गये थे, चारों ओर शान्ति का वातावरण था। ऐसे समय साहित्य की धारा किस ओर बहे ? मुगल दरबार की कला-प्रियता और भोग-विलास की भावनाओं ने भारतीय सामन्तों को भी प्रभावित किया। परिणामतः सामंतों के यहां राज-दरबारी कवियों को आश्रय मिलने लगा जिनका कर्तव्य था शृंगार प्रिय कविताओं से अपने आश्रयदाताओं को रिझाना। साथ ही साथ भक्ति-काव्य में कविता का चरम विकास हो चुका था। अब आवश्यकता थी कि संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा में उसका मूल्यांकन हो। यह मूल्यांकन की परम्परा रीतिकाल के आचार्यों ने प्रारम्भ की। रीतिकाल के उदय में ब्रजभाषा के परिमार्जित रूप का भी एक बहुत बड़ा कारण रहा। ब्रजभाषा इतनी परिमार्जित हो चुकी थी कि वह शास्त्रवाद जैसे गंभीर और शृंगार जैसी कोमल भावनाओं को व्यक्त करने में समर्थ थी। इस सबके अतिरिक्त जयदेव और विद्यापति जैसे कवियों से हिन्दी के कवियों का

परिचय हो चुका था जिनकी कविता में रीतिकालीन कविता के सभी तत्त्व विद्यमान थे। परिणाम यह हुआ कि पूरे २०० वर्ष तक हिन्दी कविता नायिका, षड्ऋतु और काव्य-शास्त्र के विभिन्न अंगों के वर्णन में ही लगी रही।

जब हम इस काल के प्रमुख कवियों का अध्ययन करते हैं तब ज्ञात होता है कि उस काल में कुछ कवि तो शस्त्रबद्ध कविता लिख रहे थे, जिन में देव का नाम प्रमुख है, कुछ कवि ऐसे थे जो शास्त्रीय नियमों पर कविता तो नहीं लिख रहे थे, पर उनकी कविता पर शास्त्र का प्रभाव था। ऐसे कवि थे बिहारी—और कुछ ऐसे कवि थे, जो शास्त्रीय परम्परा से निरन्तर मुक्त थे। जैसे घनानन्द, बोधा और ठाकुर आदि।

बिहारी में इस युग की समस्त कालगत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व होता है। उनका परिचय भी दिया गया है।

संक्षेप में रीतिकाल की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१—इस काल के कवियों के मुख्य वर्ण्य विषय नायक-नायिका, भेद, शृंगार रस के अंगोपांगों का विवेचन, षड्ऋतु वर्णन। वैसे सभी रसों का चित्रण इस काल में हुआ किन्तु शृंगार को ही रस-राजत्व प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

२—इस काल की सम्पूर्ण कविता ब्रजभाषा में लिखी गई।

३—इस काल के कवियों ने कवित्त, सवैया, घनाक्षरी जैसे छन्दों को मुख्यत: अपनाया। बिहारी ने दोहा छन्द को ही प्रमुखता दी। प्रयुक्त छन्द शृंगार-वर्णन में अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए।

४—कुछ कवियों ने काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों के लक्षण-उदाहरण देकर भारतीय काव्य शास्त्र का हिन्दी में सूत्रपात किया। रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय और ध्वनि-सम्प्रदाय का विवेचन इस काल के कवियों ने किया किन्तु प्रमुखता अलंकार और रस सम्प्रदाय को ही मिली। इन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र की टीकामात्र ही की, वे कुछ मौलिक स्थापनाएँ नहीं कर सके।

५—इस काल में भूषण जैसे राष्ट्रीय कवि भी हुए जिन्होंने पतित हिन्दू जाति के उत्थान को प्रेरित करने का प्रयत्न किया।
६—कलापक्ष की दृष्टि से इस काल की कविता श्रेष्ठ है।

भारतेन्दु युग
(१९००—१९५० वि०)

मुगलशासकों से जब सत्ता अंग्रेज़ों के हाथ में चली गई तो भारतीय जन-जीवन के प्रत्येक अंग पर इस परिवर्तन की प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेज़ों की प्रभुसत्ता ने देश के जनमानस को अपनी ओर अकर्षित किया। इस देश के लिए यह समय संक्रांति का था। एक ओर पराजित भारतीय सामंती व्यवस्था अपने विलास की स्मृतियों में पड़ी दासता की घड़ियां गिन रही थी तो दूसरी ओर इस देश के सामने था एक विदेशी शासक जिसका उद्देश्य था जनता को सड़क, नहर, रेल, तार, डाक आदि के निर्माण से अपनी ओर आकर्षित करना और उसके बहाने देश की अपार सम्पत्ति को ले जाकर लन्दन-कोष को भरना। परिणामतः भारतीय श्री-सम्पन्नता लंदन का श्रृंगार बनी। कितना बड़ा दुर्भाग्य था कि इस देश का शासन-प्रबन्ध लंदन के बनाये हुए कानूनों से होता था। राज-नीतिक स्वतंत्रता तो देश के हाथ से छिन ही गई थी। इसी समय आए ईसाई पादरी भारत में ईसाई मत का प्रचार और प्रसार करने के लिए और एक नई सभ्यता के बीज बोने के लिए। प्रारम्भ में तो देश अंग्रेज़ों के उद्देश्यों को नहीं समझ पाया किन्तु जैसे ही राजनीतिक चेतना ने करवट ली तो भारतेन्दु जैसे कवियों ने आवाज लगाई—

"पै धन विदेश चलि जात यहै दुख भारी।"

किन्तु यह चेतना मात्र बौद्धिक स्तर की थी, उस विदेशी शासन के अत्याचारों पर कवि के पास यह कहने के अतिरिक्त

"आवहु सब मिलकर देखो भाई
भारत दुर्दशा न देखी जाई"

कुछ करने-धरने जैसी भावना नहीं थी—या यों कहिए कि जनमानस जाग कर निर्णय तक नहीं पहुंच पाया था। पर नवीन शिक्षा, नवीन सामाजिक जीवन आ गया था। और चिंतन, कर्तव्य, नवीन आदर्श, नवीन विचारधारा के ऐसे ही संक्रांति-काल में आये थे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जिनकी वाणी में उद्बोधन की अपार शक्ति थी।

भारतेन्दु-युगीन काव्यगत विशेषताओं की ओर जब हमारी दृष्टि जाती है तो हमें निम्नलिखित बातें देखने में आती हैं—

१—कविता के क्षेत्र में एक ओर इस युग के कवि को प्राचीनता का मोह है तो दूसरी ओर नवीनता का आग्रह है। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने प्रकृति-चित्रण, शृंगार और लीला-वर्णन सहज अनुभूति और विदग्धता के साथ किया।

२—इस काल की कविता में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समस्याओं को भी बड़ी जागरूकता के साथ स्पर्श किया गया है।

३—इस काल की कविता में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है।

४—इस काल में शास्त्रीय एवं लोक-काव्य के छन्दों का प्रयोग हुआ। स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने कजली, बिरहा, रेखता, मलार, लावनी ठुमरी, होली, खेमटा, कहरवा, चैती, सांझी और गजल जैसे अनेक छन्दों का प्रयोग अपनी कविता में किया।

५—इस काल में नवजागरण से उत्पन्न समाज की बदली हुई समस्त मनोवृत्तियों का चित्रण हुआ और इस युग की जनवादी कविता में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश किया गया। सबसे पहले भारतेन्दु ने भक्ति को वैयक्तिक स्तर से उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाया।

द्विवेदी-युग

(१९५०-१९७५ वि०)

आधुनिक हिन्दी काव्य में द्विवेदी-युग का बहुत महत्त्व है। इस युग की सम्पूर्ण काव्य-चेतना के सूत्राधार पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। राजनीतिक दृष्टि से यह काल राष्ट्रीय जागरण का काल था। कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्थाएं जन्म ले चुकी थीं। सामाजिक क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की प्रतिष्ठा कर देश में भारतीय संस्कृति और आर्य सभ्यता की आस्था को पुन: नवजीवन देना प्रारम्भ कर दिया था। स्वामी जी ने विदेशी संस्कृति का जबरदस्त विरोध किया और भारतीय मानवता को वीरता और ब्रह्मचर्य का संदेश दिया, संयम और सदाचार की शिक्षा दी और बुद्धिवाद एवं विवेक का उपदेश दिया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी काव्यधारा में एक घोर वैचारिक क्रांति हुई। जिस युग में दयानन्द सरस्वती आर्य-सभ्यता की प्रतिष्ठा कर रहे हों, स्वामी विवेकानन्द कर्मठ वेदान्त का उपदेश दे रहे हों और तिलक गीता के कर्मयोग की महानता को प्रतिपादित कर रहे हों उस काल की कविता निश्चित रूप से जीवन के आदर्श रूप को ही अपने में समाहित कर सकती है। इसी निष्कर्ष को दृष्टि में रखकर कुछ विद्वानों ने इस काल की कविता को 'शुभ्रवसना संन्यासिनी' नाम दिया है।

इस काल के मुख्य कवि 'हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान' हैं जिन्होंने राष्ट्रीय हित-चिंतन कर काव्य को एक नूतन भूमिका प्रदान की है।

संक्षेप में द्विवेदी-युग की काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१—द्विवेदी-युग की कविता में राष्ट्रीय स्वर की प्रधानता है। इस युग में प्रवृत्ति-मूलक जीवनदर्शन को प्रस्तुत किया गया है।

२—इस काव्य की भाषा खड़ी बोली है जिसका निर्माण द्विवेदीजी के आदर्शों पर हुआ।

३—इस काव्य में पौराणिक चरित्रों को नयी भूमिका प्रदान की गई।

४—वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग कवियों ने बड़े कौशल के साथ किया।

५—पौराणिक नारी चरित्रों का राष्ट्रीय रूप प्रस्तुत किया गया।

६—इस काल में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्य-शैलियों का प्रयोग हुआ।

छायावाद

द्विवेदी-काल की कविता जब अधिक उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक हो गई, साथ ही साथ भारतीय साहित्य ने पाश्चात्य काव्य-परिचय प्राप्त कर लिया तो कुछ युवक कवियों ने द्विवेदी-कालीन कविता के प्रति युगीन प्रतिक्रिया का काव्यात्मक प्रतिनिधित्व किया। अंग्रेजी कविता में जिस स्वच्छन्दतावाद की प्रतिष्ठा हुई थी उसे यहाँ का कवि अपनी भाषा में भी प्रस्तुत करना चाहता था। दूसरे द्विवेदी-कालीन घोर नैतिकता के प्रचार के कारण मानव-हृदय की सहजात कोमल भावनाएँ अपनी अभिव्यक्ति के लिऐ छटपटा रही थीं। जिस कोमल अनुभूति और जीवन के प्रति संवेदना की उपेक्षा द्विवेदी-काल में हुई थी, कवि उसे नूतन जीवन देना चाहते थे। द्विवेदी-युगीन कल्पनाहीनता के प्रति एक विद्रोह उभर रहा था। परिणाम यह हुआ कि श्रीधर पाठक, प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी जैसे कवियों ने प्रचलित काव्य-शैली और कथ्य से अपने को पृथक् कर लिया। इसी समय इन कवियों को रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे स्वच्छन्दतावादी कवियों से प्रेरणा मिल रही थी। ये कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने हिन्दी काव्य में कथ्य, शैली, भाषा, छन्द, अलंकार और जीवनदर्शन के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व क्रांति उपस्थित की।

इस काल की काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१—इस काल की कविता में गोचर में अगोचर की खोज, पार्थिव में दिव्य का अवतरण, मानवीय भावना में निसर्ग का स्थान

श्रौर मानवीय सीमाश्रों में ही श्रसीम की प्रतिष्ठा भारतीय श्रद्वैत दर्शन के श्राधार पर हुई।

२—इस काल की कविता में व्यक्तिवाद की सीमाश्रों में ही समष्टिवाद का दर्शन किया गया।

३—इस काल का सम्पूर्ण काव्य प्रगति शैली में लिखा गया।

४—इस काल की कविता में खड़ी बोली का श्रधिक परिमार्जित रूप देखने को मिलता है।

५—इस काल की कविताश्रों में शृंगार-भावनाश्रों का उदात्तीकरण किया गया है।

६—छायावाद के कवियों ने प्रकृति के माध्यम से रहस्यवादी श्रभिव्यक्ति की है।

७—इस काल की कविता में वेदना श्रौर निराशा का भाव श्रधिक है।

८—रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्र, गांधी श्रौर श्ररविन्द से प्रभावित होकर इस काल के कवियों ने एक व्यापक मानवतावादी सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की।

प्रगतिवाद

छायावादी काव्य जब श्रधिक सूक्ष्म, रहस्यात्मक श्रौर कल्पनाशील हो गया तो उस काव्यधारा के प्रति भी साहित्य में एक सशक्त प्रतिक्रिया हुई। इधर सामाजिक क्षेत्रों में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उभरकर श्रा गई थीं कि छायावादी काव्य में उन सबका कोई उपयुक्त समाधान नहीं मिल रहा है। शोषण, गरीबी, वर्गभेद, श्रार्थिक परतंत्रता ये कुछ ऐसी परिस्थितियां थीं जिन्होंने हिन्दी कवियों को कल्पना-लोक से खींचकर धरती की समस्याश्रों की श्रोर उन्मुख किया। यही वह समय है जब कि मार्क्स जैसे साम्यवादी विचारक का प्रभाव देश के बौद्धिक वर्ग पर पड़ रहा था। परिणाम यह हुश्रा कि हिन्दी कविता में प्रगतिशील भावनाश्रों ने जन्म लिया। राजनीतिक विचारधारा में जिसे

साम्यवाद कहते हैं, सामाजिक क्षेत्र में जिसे समाजवाद कहते हैं, दर्शन के क्षेत्र में जिसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं, साहित्यिक क्षेत्र में उसी को प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया जाता है। भारतवर्ष में इस क्रांतिकारी विचारधारा से प्रभावित होकर एक प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी हुई जिसका उद्देश्य था साहित्य में जनवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति को प्रमुखता देना।

यदि हिन्दी के उत्तर छायावादी युग की कविता को सूक्ष्म दृष्टि से से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि बच्चन, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रगतिवादी भावनाओं को तो अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है पर वे शुद्ध मार्क्स-वादी नहीं है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर कविता लिखने वाले कवियों में सुमित्रानन्दन पंत, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रांगेय राघव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१—इस काल की कविता में धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूढ़ियों का विरोध किया गया।

२—इस काल की सम्पूर्ण कविता शोषितों का क्रांतिकारी गान है।

३—प्रगतिवाद काव्य में शोषकों के प्रति घृणा और रोष प्रकट किया गया है।

४—सामाजिक क्रांति की भावनाएँ इस काल की कविता में प्रमुख हैं।

५—इस काल की कविता ने एक नवीन मानववाद की प्रतिष्ठा की जो सामाजिक भेदभाव से दूर एक व्यापक मानव-समाज की प्रतिष्ठा करता है।

६—सामयिक समस्याओं और उनका यथार्थ चित्रण करना प्रगति-वादी कवियों का प्रमुख उद्देश्य रहा।

७—भाषा, छन्द और अलंकार को ये कवि अधिक मूल्य न देकर शुद्ध जनवादी काव्य लिखने के पक्ष में रहे।

प्रयोगवाद

प्रगतिवादी काव्य में काव्यकला को जब नगण्य घोषित कर उसे प्रचार का रूप प्रदान कर दिया गया तब इस काव्यधारा के प्रति जो कलात्मक क्षेत्र की प्रतिक्रिया हुई उसे प्रयोगवादी काव्यधारा कहा जाता है। प्रयोगवादी कवियों की मान्यता है कि काव्यक्षेत्र में कथ्य, भाषा, छन्द, शैली, उपमा, प्रतीक आदि की स्थितियाँ रूढ़ हो गई हैं और नवीन जीवन-बोध को यथातथ्य अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए कथ्य, शैली, छन्द, भाषा, उपमा और प्रतीक आदि सभी क्षेत्रों में नूतन प्रयोग होने आवश्यक हैं। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं—अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, केदारनाथ आदि। इस काव्यधारा की प्रयोगवादी शैली देखने योग्य है।

कबीरदास

साखी

[संकलित दोहे, ज्ञान, भक्ति और नीति के विषयों से सम्बद्ध हैं। इनमें आत्मा की अमरता, संसार की असारता, गुरु की महिमा तथा दया, सन्तोष और विनम्रता आदि सद्गुणों पर बल दिया गया है।]

साईं ते सब होत है बन्दे ते कछु नाहिं।
राई ते परबत करै, परबत राई माँहि ॥१॥

ज्यों तिल माँहीं तेल है, जो चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सकै तो जागि ॥२॥

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं ॥३॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥४॥

उत तें कोऊ न आवई, जासों पूछूं धाइ।
इततें सब ही जात हैं, भार लदाई लदाइ ॥५॥

जिनि ढूंढ़ा तिनि पाइयाँ, गहरे पानी पैठि।
हौं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठि ॥६॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहं पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ।।७।।

पोथी पढ़-पढ़ जग मुवा, पंडित हुवा न कोइ ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै तो पंडित होइ ।।८।।

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेतु बिनु प्रान ।।९।।

सिख तो ऐसा चाहिए, गुरु को सब कछु देय ।
गुरु तो ऐसा चाहिए, सिख से कछु नहिं लेय ।।१०।।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागों पायँ ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ।।११।।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ।।१२।।

जाति न पूछौ साध की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ।।१३।।

केसन कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये, जामें विषय-विकार ।।१४।।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ।।१५।।

पाहन पूजौं हरि मिलें, तो मैं पूजों पहार।
याते तो चाकी भली, पीस खाय संसार ॥१६॥

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय ॥१७॥

सिहों के लहँड़े नहीं, हँसों की नहीं पाँति।
लालों की नहीं बोरियाँ, साधु न चलैं जमाति ॥१८॥

मूँड मुड़ाए हरि मिलें, सब कोई लेयं मुड़ाय।
बार बार के मूँड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय ॥१९॥

दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ॥२०॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोइ।
औरन को शीतल करै, आपहुं शीतल होइ ॥२१॥

रोड़ा ह्वै रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जो जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान ॥२२॥

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥२३॥

लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै सक्कर चली, हाथी के सिर धूरि ॥२४॥

गो-धन गज-धन बाजि-धन, और रतन-धन-खान ।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥२५॥

साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥२६॥

देख बिरानि चूपड़ी, मत ललचावे जीव ।
रूखा-सूखा खाइके, ठंडा पानी पीव ॥२७॥

साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखे प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥२८॥

सत्य नाम कड़ुआ लगै, मीठा लागै दाम ।
दुबिधा में दोऊ गए, माया मिली न राम ॥२९॥

साँचे कोई न पतीजई, झूठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥३०॥

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं ।
कहीं कहीं जो मैं किया, तुम ही थे मो माहिं ॥३१॥

सूरदास

विनय के पद

[सूरदास पहले अधिकतर विनय के पद रचा करते थे। वल्लभाचार्य जी से भेंट होने और उनका उपदेश ग्रहण करने के बाद आप कृष्ण के लीलावर्णन की ओर मुड़े। विनय के पदों में दैन्य भावना की प्रधानता पायी जाती है। अपने को सब प्रकार से अकिंचन और पतित समझते हुए भगवान से उद्धार की प्रार्थना की जाती है। विषय-वासनाजन्य अपने कालुष्य को मिटाने के लिए भक्त भगवान के अनुग्रह की याचना करता है। इन पदों में भक्ति-मार्ग में बाधा डालने वाले असन्त व्यक्तियों से दूर रहने का भी भाव व्यक्त होता है।

(१)

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल कौ रस, अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालम्ब मन चक्रत धावै।
सब विधि अगम विचारहि ताते, 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

(२)

प्रभु मोरे औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तिहारौ, चाहे तो पार करौ॥

एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परो ।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत, कंचन करत खरो ।।
एक नदिया एक नार कहावत, मैलो नीर भरो ।
जब मिलि कै दोउ एक बरन भए, सुरसरि नाम परो ।।
एक जीव एक ब्रह्म कहावत, 'सूर' श्याम झगरो ।
अब की बेर मोहि पार उतारहु, नहिं पन जात टरो ।।

(३)

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग ।।
कहा भयो पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में, निसि दिन रहत उमंग ।।
कागहि कहा कपूर खवाये, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग ।।
पाहन पतित बान नहिं भेदत, रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारि कामरि, चढ़ै न दूजो रंग ।।

बाल लीला

[सूरदास के बाल-लीला के पदों में बाल-मनोविज्ञान-सुलभ गहरी अन्तर्दृष्टि मिलती है । ये पद बालक कृष्ण की विविध क्रियाओं और नटखटपन का सूक्ष्म और साकार चित्र प्रस्तुत करते हैं । बालक कृष्ण के प्रति माता यशोदा के हृदय के जो भाव व्यक्त हुए हैं उनमें वात्सल्य रस की सुन्दर धारा प्रवाहित है । कृष्ण की बाल-सुलभ निरीह चातुरी के चित्रण में मुग्धकारी हास्य स्फुट होता है । बाल लीला के पदों में सूरदास की विशेष तन्मयता दृष्टिगोचर होती है ।]

(१)

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न बेगि हीं आवै, तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूंदि लेत है, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि, करि-करि सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै ।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ, सो नंदभामिनि पावै ॥

(२)

चलत देखि जसुमति सुख पावै ।
ठुमुक-ठुमुक धरनी पर रेंगत, जननिहि खेल खिलावै ॥
देहरी लौं चलि जात, बहुरि फिरि फिरि इतही को आवै ।
गिरि गिरि परत बनत नहिं लाँघत, सुर मुनि सोच करावै ॥
कोटि ब्रह्माण्ड करत छिन भीतर, हरत बिलम्ब न लावै ।
ताको लिए नन्द की रानी नाना रूप खिलावै ॥
तब जसुमति कर टेकि स्याम को क्रम-क्रम सौं उतरावै ।
'सूरदास' प्रभु देखि देखि कै सुर नर बुद्धि भुलावै ।

(३)

खेलत में को काको गुसैयाँ ?
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ ।
जाति पाँति हमते बढ़ि नाहीं, नहिंन बसत तुम्हारी छैयाँ ॥
अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ ।

रूठि करै तासों को खेलै ? रहे पौढि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ ।।
'सूरदास' प्रभु खेलौइ चाहत, दाँव दयो करि नंद दौहैयां ।

(४)

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ ।
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोहि जसुमति कब जायौ ।।
कहा कहौं ऐहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हारौ तातु ।।
गोरे नन्द जसौदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर ।
चुटकी दे दे हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ।।
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुं न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै ।।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत ।
'सूर' स्यात मोहि गोधन की सौं, हौं जननी तू पूत ।।

(५)

मैया ! मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ ।।
देखि तुही छींके पर भाजन ऊंचे धर लटकायौ ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे धरि पायौ ।।
मुख दधि पौंछि कहत नंद-नंदन दोना पीठि दुरायौ ।
डारि सांटि मुसकाय तबहि गहि सुत को कंठ लगायौ ।।
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायौ ।
'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव विरंचि बौरायौ ।।

गोपी-विरह

[गोकुल में रहते हुए कृष्ण ने वहाँ की ग्वाल-बालाओं या गोपियों के साथ अनेक प्रकार की बाल-लीलाएँ और मान-लीलाएँ कीं। जब वे मथुरा चले गए तो गोपियों को विरह-दुःख उठाना पड़ा। गोपी-विरह सम्बन्धी पदों में सूरदास ने कृष्ण-प्रेम विषयक गोपियों की निष्ठा आशा-निराशाओं और मर्यादा का मार्मिक चित्रण किया है। स्मृति, चिन्ता, अभिलाषा, गुण-कथन आदि विरह की दसों दशाओं का उनमें चित्रण मिलता है। प्रस्तुत पदों में क्रमशः प्रेमी हृदय की निराशा और मर्यादा चित्रित है।]

(१)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो॥
अलि सुत प्रीति करी जलसुत सों, संपुट मांझ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जु नाद सों, सनमुख बान सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो॥
'सूरदास' प्रभु बिनु दुख दूनो, नैननि नीर बह्यो॥

(२)

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
बासर रैनि नाँव लै बोलत, भयो विरह जुर कारो॥
आपु दुखित पर जिय जानि, चातक नाँव तिहारो॥
देखो सकल विचारि सखी, जिय बिछुरन को दुख न्यारो॥
जाहि लगै, सोई पै जानै प्रेम बान अनियारो।
'सूरदास' प्रभु, स्वाति-बूंद लगि तज्यो सिंधु करि खारो॥

(३)

संदेसनि मधुवन कूप भरे ।
जे कोउ पथिक गए हैं ह्याँतें, फिरि नहिं अबन करे ।।
कै वै स्याम सिखाइ समोधे, कै वे बीच मरे ।।
अपने दूत नहिं पठवत नंदनन्दन, हमरेउ फेरि धरे ।।
मसि खूटी कागद जल भीजे, सरदौ लागि जरे ।
पाती 'सूर' लिखें कहो क्योंकर पलक कपाट अरे ।।

(४)

ऊधो ! मन माने की बात ।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत-फल बिस कीरा बिस खात ।।
जो चकोर को दै कपूर कोउ तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरि काठ में बँधत कमल के पात ।।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात ।
'सूरदास' जाको मन जासों सोई ताहि सुहात ।।

तुलसीदास

लक्ष्मण-परशुराम संवाद

[प्रस्तुत अंश 'रामचरितमानस' के बालकांड से लिया गया है। धनुष-भंग के पश्चात् राजा जनक के दरबार में परशुराम जी पहुँचते हैं, अपने गुरु शिव के धनुष को टूटा देखकर उन्हें रोष हो आया। उन्होंने जनक जी को डरा-धमकाकर पूछताछ शुरू की। जब परशुराम जी ने उनका राज्य उलट देने की धमकी दी तो लक्ष्मण उसे सहन न कर सके और उनका परशुराम से विवाद हो गया। प्रसंग वीर-रसपूर्ण भी है और इसमें हास्य का पुट भी है। नाटकीयता भी इसमें खूब बन पड़ी है।]

खरभरु देखि बिकल पुरनारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयेउ भृगुकुल कमलपतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहु चितवत मनहु रिसाते॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥

सांत बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररसु आयेउ जहं सब भूप॥

देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ।।
पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ।।
जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी । सो जानै जनु आइ खुटानी ।।
जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ।।
आसिष दीन्हि सखी हरषानी । निज समाज लै गई सयानी ।।
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पद सरोज मेसे दोउ भाई ।।
राम लखन दसरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ।।
रामहि चितइ रहे भरि लोचन । रूप अपार मारमद मोचन ।।

बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर ।
पूछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ।।

समाचार कहि जनक सुनाये । जेहि कारन महीप सब आये ।।
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ।।
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा ।।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । उलटउँ महि जहँलहि तव राजू ।।
अति डरु उतरु देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ।।
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ।।
मन पछिताति सीय महतारी । बिधि अब सँवरी बात बिगारी ।।
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कलप सम बीता ।।

सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु ।
हृदय न हरषु-बिषादु कछु, बोले श्री रघुबीर ।।

नाथ संभु धनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दास तुम्हारा ।।
आयसु काह कहिअ किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ।।
सेवक सो जो करै सेवकाई । अरि करनी करि करिअ लराई ।।
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा । सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ।।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न तु मारे जैहहिं सब राजा ।।
सुनि मुनि बचन लषनु मुसुकाने। बोले परसुधरहिं अपमाने ।।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई। कबहुँ न असि रिसि कीन्ह गोसाई ।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ।।

रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ।।

लषन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना ।।
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें ।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू ।।
बोले चितय परसु की ओरा। रे सठ सुनेसि सुभाउ न मोरा ।।
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहिं मोही ।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व विदित छत्रिय कुल द्रोही ।।
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ।।

मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीसकिसोर।
गर्भन्ह के अर्भकदलन, परसु मोर अति घोर ।।

बिहँसि लषनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महाभट मानी ।।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूंकि पहारू ।।
इहाँ कुम्हड़ बतिआ कोउ नाहीं। जो तरजनी देखि मरि जाहीं ।।
देखि कुठारू सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना ।।
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी ।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ।।
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पा परिअ तुम्हारे ।।
कोटिकुलिस सम वचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।।

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर ।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि, बोले गिरा गंभीर ।।
कौसिक सुनहु मन्द यह बालक । कुटिल कालबस निज कुल घालक ।
भानुबंस राकेस-कलंकू । निपट निरंकुस अबुध असंकू ।।
काल कवलु होइहि छन माहीं । कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ।।
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा । कहि प्रताप बलु रोषु हमारा ।।
लषन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा । तुम्हहि अछत को बरनै पारा ।।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ।।
नहि संतोषु तौ पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ।।
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ।।
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलापु ।।
तुम्ह तौ काल हाँक जनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ।
सुनत लषन के बचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ।।
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू । कटुवादी बालकु बध जोगू ।।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा । अब यह मरनिहार भा साँचा ।।
कौसिक कहा छमिअ अपराधू । बल दोष गुन गनहिं न साधू ।।
कर कुठार मैं अकरुन कोहीं । आगें अपराधी गुरुद्रोहीं ।।
उतर देत छाँड़उँ बिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे ।।
न तु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरहि उरिन होतेऊँ श्रम थोरे ।।
गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ ।।
कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा ।।
माता पितहि उरिन भये नीकें । गुररिनु रहा सोचु बड़ जीकें ।।

सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । तुरत देऊँ मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखाबहु मोही । बिप्र विचारि बचउ नृप द्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहीं के बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति समनहि लषनु नेवारे ॥

लषनु उतर आहुति सरस, भृगुबर कोष कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुल भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूध मुख करिअ न कोहू ॥
जा पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना ॥
जौ लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नखसिख रिसब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूट मुख पय मुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीचु मीचु सम देख न मोही ॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोपु करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पाय पिराने ॥
जौ अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥
बोलत लषनहिं जनुक डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
थर थर काँपहिं पुर नरनारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभयबानी। रिस तन जरइ होइ बल हानी ॥

बोले रामहिं देइ निहोरा । बचउ बिचारि बंधु लघु तोरा ।।
मन मलीन तन सुन्दर कैसे । विसरष भरा कनक घटु जैसे ।।

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम ।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ।।

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले रामु जोरि जुग पानी।।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक वचनु करिअ नहिं काना।।
बररै बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहि न सन्त बिदूषहिं काऊ ।।
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ।।
कृपा कोपु बधु बंधव गोसाईं । मो पर करिए दास की नाईं ।।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई।।
कह मुनि राम जाय रिस कैसे । अजवँ अनुज तव चितव अनैसे।।
एहि के कंठ कुठारु न दीन्हा । तो मैं कहा कोपु करि कीन्हा ।।

गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठारगति घोर ।
परस अछत देखउँ जिअत, बैरी भूपकिसोर ।।

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृप घाती ।।
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ।।
आजु दया दुखु दुसह सहावा । सुनि सौमित्रि बहुरि सिर नावा ।।
बाउ कृपा मूरति अनुकूला । बोलत बचत झरत जनु फूला ।।
जौ पै कृपा जरहि मुनि गाता । क्रोध भए तनु राखु विधाता ।।
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू।।
वेगि करहुँ किन आँखिन्ह ओटा । देखत छोट खोट नृप-ढोटा ।।
विहँसे लषन कहा मन माहीं । मूंदें आँखि कतहूँ कोउ नाहीं ।।

परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ।।

राम-चरित

[प्रस्तुत पद 'कवितावली' से अवतरित किए गए हैं। इनमें रामचरित से सम्बन्धित अनेक मार्मिक स्थलों को काव्य-पंक्ति-बद्ध किया गया है। प्रथम पद में राम की बाल-लीला का वर्णन है। अग्रिम पंक्तियों में क्रमशः अयोध्या-त्याग, केवट-विनोद, वन-मार्ग में चलते हुए राम, लँका-दहन आदि प्रसंगों को मार्मिक ढंग से प्रकट किया गया है। इन पदों में तुलसीदास जी ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता, विनोद-प्रियता का परिचय दिया है। लंका-दहन के प्रसंग में भयानकता का सफल चित्र अंकित है।

बाल विनोद

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसि आइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरैं॥

अयोध्या त्याग

कागर कीर ज्यों भूषन चीर सरीरु लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिन, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिव लोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाऊ की नाई॥

पुर तें निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सूखि गए मधुरा धर द्वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्न कुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

केवट-विनोद

पात भरी सहरी सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढाइ हौं।
सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू,
हौं दीन वित्त हीन,कैसें दूसरी गढाइ हौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषादु ह्वै कै वादु ना बढ़ाइ हौं।
तुलसी के ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोएँ नाथ नाव ना चढाइ हौं।

वन-मार्ग में राम

रानी मैं जानी अयानी महा, पवि पाहन हू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो,कह्यो तियको जिहि कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु,इन्हें किमि कै बनबासु दियो है।।

लंका-दहन

बालधी बिसाल विकराल, ज्वाल जाल मानो
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूम केतु,
वीर रस वीर तरवारि सो उघारी है।।
'तुलसी' सुरेस-चापु कैधों दामिनि कलापु,
कैधों चली मेरु तें कृसानु-सरि भारि है।।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो, अब नगरु प्रजारि है।।

दैन्य-सामर्थ्य और आत्मबोध

[प्रस्तुत पदों में राम के प्रति तुलसीदास की दास्य-भक्ति व्यक्त है। इसमें अपने भक्त के प्रति राम की अनुकंपा एवं भक्त-वत्सलमूलक गुणों को व्यक्त किया गया है। राम की भक्ति से विमुख करने वाली संसार की सभी वस्तुएँ और सम्बन्ध त्याज्य हैं :

(१)

ऐसो को उदार जग माँहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा विभीषन कँह अति सकुच-सहित हरि दीन्ही ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तो भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥

(२)

हरि ! बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहिं कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं विपति अति दारुनि जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा डोरि बंसी पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु दुख मेरो, कौतुक राम तिहारो ॥

हैं स्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
तुलसीदास येहि जीव मोह रजु जोइ बांध्यो सोइ छोरै ॥

(३)

जाके प्रिय न राम-वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बेरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे, बहु तक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ॥
जासों होय सनेह राम–पद एतो मतो हमारो ॥

रहीम

दोहावली

[संकलित दोहे 'रहीम रत्नावली' से उद्धृत हैं। दोहों में अधिकांशतः व्यावहारिक नीति की बातें ही प्रकट हुई हैं।]

अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसरहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥१॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल ॥२॥

अंतर दाव लगी रहै, धुआं न प्रकटै सोय।
कै जिस जानें आपनो, जा सिर बीती होय ॥३॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥४॥

करमहीन रहिमन लखो, धँस्यौ बड़े घर चोर।
चिन्तन ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥५॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय ॥६॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥७॥

कहि रहीम या जगत से, प्रीति गई दै टेरि।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥८॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत ॥९॥

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै ले जाय ॥१०॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम ॥११॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥१२॥

खेंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति ॥१३॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस ॥१४॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन के उतपात।
का रहीम हरि को घटयो, जो भृगु मारी लात ॥१५॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँडए तर की गाँठ में, गाँठ गांठ रस होय ॥१६॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥१७॥

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥१८॥

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड़ लोग ।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥१६॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि ।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥२०॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि कै सुलगाहिं ॥२१॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय ।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय ॥२२॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तो अति ही इतराय ।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥२३॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥२४॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात ।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥२५॥

तन रहीम है कर्मबस, मन राखो ओहि ओर ।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुरु के जोर ॥२६॥

तबही लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम ।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥२७॥

तैं रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर ।
निसि वासर लाग्यो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर ॥२८॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥२९॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट कुँडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ।।३०।।

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहाँ भौंर को भाय।।३१।।

धनि रहीम जल पंक को, लघु जियं पिअत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पिआसो जाय ।।३२।।

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह ।
जैसी परे सो सहि रहे, त्यों रहीम यंह देह ।।३३।।

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीमं जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ।।३४।।

मुकता कर, करपूर कर, चातक जीवन जोय ।
येतों बड़ो रहीम जल, व्याल बदन विष होय ।।३५।।

मंदन के मरिहू गए, औगुन गन न सराहिं ।
ज्यों रहीम बाधहु बधे, मरहा ह्वै अधिकाहिं ।।३६।।

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भाँति विपरीति ।।३७।।

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीब को, चिंता जीव समेत ।।३८।।

रसखान

सवैया

[संकलित सवैयों में कृष्ण के मोहक सौन्दर्य के प्रति भक्ति-भावना निवेदित है। राधा कृष्ण की मुरली से डाह करती हुई लक्षित होती है। कृष्ण की वेश-भूषा सबको आकृष्ट करती है। अपने आकर्षणों से कृष्ण ने ब्रज के नर-नारियों को मोहित कर लिया। गोपांगनाएं विशेष रूप से दीवानी दृष्टिगत होती हैं। उनकी मुरली की आवाज सुनकर सभी दीवानी हो उठती हैं।]

सोहत हैं चँदवा सिर मौरि के,
जैसिये सुंदर पाग कसी है।
तैसिये गोरज भाल बिराजति,
जैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकत बौरी भई,
दृग मूंदि के ग्वालि पुकारि हसी है।
खौलि री घूंघर खोलौं कहा,
वह मूरति नैनन माँझ बसी है॥१॥

आयौ हुतौ नियरे 'रसखानि'
कहा कहूँ तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज मैं सिगरी बनिता,
सब वारति प्राननि लेत बलैया॥

कोऊ न काहू की कानि करै,
कछु चेटक सो जु करयौं जदुरैया।
गाइगौ तान जमाइगौ नेह,
रिझाइगौ प्रान चराइगौ गैया॥२॥

कल कानन कुँडल मोर पखा,
उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि,
तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखै तन पीतपटा,
सत दामिनि की दुति लाजति है।
वह बांसुरी की धुनि कान परें,
कुलकानि हियो तजि भाजति है॥३॥

ब्रह्म मैं ढूंढ़यो पुरानन गानन,
बेद रिचा सुनि चौगुनें चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्यो,
'रसखानि' बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर में,
बैठो पलोटत राधिका पायन॥४॥

सेस गनेस महेस दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।

जाहि अनादि अनंत अखंड,
अछेद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से सुक ब्यास रहैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ॥५॥

मकराकृत कुंडल गुंज की माल,
वे लाल लसैं पग पाँवरिया ।
बछरानि चरावन के मिस भावतो,
दै गयौ भावती भांवरिया ॥
'रसखानि' बिलोकत ही सिगरी,
भई बावरिया ब्रज डाँवरिया ।
सजनी इहिं गोकुल में बिष सो,
बगरायौ है नंद के साँवरिया ॥६॥

मोर पँखा सिर ऊपर राखिहौं,
गुंज की माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी,
बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो,
तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की,
अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥७॥

एक समै मुरली धुनि में,
'रसखानि' लियौ कहुं नाम हमारो ।।
ता दिन तें परि बैरि बिसासिनी,
झांकन देती नहीं है दुवारो ।।
होत चबाव बचाओ सु क्यों करि,
क्यों अलि भेंटिए प्रान पियारो ।
दृष्टि परी तबहीं चटको,
अटको पियरे हियरे पटवारो ।।८।।

बिहारी

दोहे

[बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं। वे नायक-नायिका-भेद को आधार बनाकर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए हैं। वे रीतिकाल के प्रतिनिधि शृंगारी कवि हैं। कुछ नीति और ज्ञानोपदेश के भी दोहे लिखे हैं। यहाँ दोनों प्रकार के पद संकलित हैं। शृंगारी पदों में अधिकतर मुग्धा नायिकाओं और परकीया नायिकाओं के प्रेम-सौन्दर्य का चित्रण हुआ है।]

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित-अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ ॥१॥

सखि, सोहति गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए, दावानल की ज्वाल ॥२॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्यामु सुभग-सिर-मौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु ॥३॥

वन तन कौं निकसत लसत, हँसत हँसत इत आइ।
दृगखंजन गहि लै चल्यौ चितवति चैंपु लगाइ ॥४॥

चित-वितु वचतु न हरत हठि, लालन दृग बरजोर।
सावधान के वटपरा ए जागत के चोर ॥५॥

सुरति न ताल न तान की उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी राग बिगारि गौ बैरी बौल सुनाइ ॥६॥

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह ।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै बड़ौ उज्यारौ गेह ।।७।।

अंग अंग प्रतिबिंबये परि दरपन सें सब गात ।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जानें जात ।।८।।

कंचन तन धन बरन बर रह्यो रंग मिलि रंग ।
जानी जाति सुवासहीं केसरि लाई अंग ।।९।।

केसरि कै सरि क्यों सकै चंपकु कितकु अनूपु ।
गातरूप लखि जात दुरि जातरूप को रूपु ।।१०।।

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ ।
सौंधे कैं डोरैं लगी, अली चली सँग जाइ ।।११।।

तूं रहि हौं हीं सखि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल ।
सबहिनु बिनु हीं ससि उदै दीजतु अरघु अकाल ।।१२।।

रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप ।
कितौ मिठास दयौ दई इतैं सलोनै रूप ।।१३।।

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ ।
सगुन सलोने रूप की जु न चखतृषा बुझाइ ।।१४।।

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।।१५।।

भूषन भारु सँभारि है क्यौं इहिं तन सुकुमार ।
सूधे पाँइ न धर परैं सोभा ही कैं भार ।।१६।।

न जक धरत हरि हिय धरैं नाजुक कमला बाल ।
भजत भार भयभीत ह्वै घनु चंदनु वनमाल ।।१७।।

अरुन वरन तरुनी चरन अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरंग रँगु सी मनौ चपि बिछियनु कैं भार ॥१८॥

छाले परिवे कें डरनु सकै न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कें झँवा झँवैयत पाइ ॥१९॥

सोहत अँगुठा पाइ कै अनवट जर्‌यौ जराइ ।
जीत्यौ तरिवन दुति सु ढरि पर्‌यौ तरनिमुनु पाइ ॥२०॥

अजौं तर्‌यौन हीं रह्यौ श्रुति सेवत इकरंग ।
नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग ॥२१॥

मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिवें काज ।
दृग पग पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ॥२२॥

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहिं हेत ।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत ॥२३॥

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति ।
जलचादार के दीप लौं जगमगाति तनजोति ॥२४॥

सोरठा—मंगल बिंदु सुरंगु, मुखु ससि केसरि आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचनजगत ॥२५॥

दोहा—कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु ।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु ॥२६॥

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ ।
छविहिं बढ़ावतु रवि मनौ ससिमंडल मैं आइ ॥२७॥

कहत सबै बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु ।
तिय लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥२८॥

रस सिंगार अंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजन हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन ॥२९॥

जोग जुगुति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता काननु सेवत नैन ॥३०॥

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं हरि नीके ए नैन ॥३१॥

संगति दोषु लगै सबनु कहे ति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुवसँग भये, कुटिल बंक गति नैन ॥३२॥

झूठे जानि न संग्रहे मन मुंह निकसे बैन।
याही तैं मानहु किये बातनु कौ विधि नैन ॥३३॥

सायक सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥३४॥

चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन ॥३५॥

दृगनु लगत बेधत हियहि विकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं विषम ईछन तीछन बान ॥३६॥

कहा लाड़ ते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पटु, कहूँ मुकुट बनमाल ॥३७॥

जटिल नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक।
मनौ अली चम्पक कली बसि रसुलेतु निसाँक ॥३८॥

बेसरि मोति दुति झलक परी ओंठ पर आइ।
चूनौ होइ न चतुर तिय क्यों पट पोंछ्यौ जाइ ॥३९॥

बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु।
बरबट बेधत मो हियौ तो नासा को बेधु ॥४०॥

लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तर्‌यौना काम।
पर्‌यौ मनौ सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान ॥४१॥

ललित स्यामलीला ललन बड़ी चिबुक छविदून।
मधु छाक्यौ मधुकर पर्‌यौ मनौ गुलाब प्रसून ॥४२॥

सूर उदित हूँ मुदित मन मुखु सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँ ओर तें निहचल चखनु चकोर ॥४३॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यमुना-वर्णन

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाये ।।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ।।
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ।।१।।

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लागि रहि पाँतिन ।।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमगे प्रिय पिया प्रेम के अनगिन गोभा ।।
कै करिकं कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ।।२।।

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ।।
कै ब्रज-तियगन-वदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आईं ।।

कै सात्त्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ।।३।।

तिन पैं जेहि छिन चंद-जोति राका निसि आवति।
जल मैं मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति ।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुंदर सो सोभा ।।
सो को कबि जो छबि कहि सकै, ता छन जमुना-नीर की।
मिलि अवनि और अंबर रहत, छबि इसकी नभ-तीर की ।।४।।

परत चंद्र-प्रतिबिंब कहूँ जल माधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ।।
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ।।
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है ।।५।।

कबहुँ होत सत चंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिंब-रूप जल मैं बहु साजत ।।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ।।
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आवती ।।६।।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकइ चलत, कै फुहार-जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि, उठि बैठत कसरत करत ॥७॥

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रोर बिबिध पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥

कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये ।
रत्न-रासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये ॥
मनु-मुक्त माँग सोभित भरी, स्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं, ब्रज निवास लखि हिय हरसि ॥९॥

भाषा-ज्ञान

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥१॥

अँग्रेजी पढ़िके जदपि, सब गुन होत प्रबीन ।
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन ॥२॥

उन्नति पूरी है तबहि, जब घर उन्नति होय ।
निज शरीर उन्नति किए, रहत मूढ़ सब कोय ॥३॥

निज भाषा उन्नति बिना, कबहुँ न ह्वै हैं सोय ।
लाख उपाय अनेक यों, भले करो किन कोय ॥४॥

इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग ।
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग ॥५॥

और एक अति लाभ यह, यामे प्रगट लखात ।
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात ॥६॥

तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय ।
यह गुन भाषा और महँ, कबहूँ नाहीं होय ॥७॥

बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देसन से लै करहुँ, भाषा माहिं प्रचार ॥८॥

भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात ।
बिबिध देस मतहू बिबिध, भाषा बिबिध लखात ॥९॥

सब मिल बासों छाड़िकै, दूजे और उपाय ।
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय ॥१०॥

हरिऔध

क्या से क्या

धूल में धाक मिल गई सारी।
रह गये रोब दाब के न पते ।।
अब कहाँ दबदबा हमारा है।
आज हैं बात बात में दबते ।।

आज दिन धूल है बरसती वाँ।
धन बरसता रहा जहाँ सब दिन ।।
तन रतन से सजे रहे जिनके।
बेतरह आज वे गये तन बिन ।।

आज बेढंग बन गये हैं वे।
ढंग जिन में भरे हुए कुल थे ।।
बाँध सकते नहीं कमर भी वे।
बाँधते जो समुद्र पर पुल थे ।।

जो रहे आसमान पर उड़ते।
आज उनके कतर गये हैं पर ।।
सिर उठाना उन्हें पहाड़ हुआ।
जो उठाते पहाड़ उँगली पर ।।

हैं रहे डूब वे गड़हियों में।
बेतरह बार-बार खा धोखा ।।
सूखता था समुद्र देख जिन्हें।
था जिन्होंने समुद्र को सोखा ।।

जो सदा मारते रहे पाला।
वे पड़े टालटूल के पाले ।।
आज हैं गाल मारते बैठे।
जंगलों के खँगालने वाले ।।

तप सहारे न क्या सके कर जो।
मन उन्हीं का मरा बहुत हारा ।।
हैं लहू घूँट आज वे पीते।
पी गये थे समुद्र जो सारा ।।

सब तरह आज हार वे बैठे।
जो कभी थे न हारने वाले ।।
आप हैं अब उबर नहीं पाते।
स्वर्ग के भी उबारने वाले ।।

पेड़ को जो उखाड़ लेते थे।
हैं न सकते उखाड़ वे मोथे ।।
वे नहीं कूद-फांद कर पाते।
फाँद जाते समुद्र को जो थे ।।

जो जगत-जाल तोड़ देते थे।
तोड़ सकते वही नहीं जाला॥
वे मथे मथ दही नहीं पाते।
था जिन्होंने समुद्र मथ डाला॥

फूल और कांटा

(१)

हैं जनम लेते जगह में एक ही,
एक ही पौधा उन्हें है पालता।
रात में उनपर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता॥

(२)

मेंह उनपर है बरसता एक-सा,
एक-सी उनपर हवाएँ हैं बहीं।
पर सदा ही यह दिखाता है समय,
ढंग उनके एक-से होते नहीं॥

(३)

छेदकर काँटा किसी की उँगलियाँ,
फाड़ देता है किसी का वर वसन।
और प्यारी तितलियों का पर कतर,
भौंर का है बेध देता श्याम तन॥

(४)

फूल लेकर तितलियों को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला।
निज सुगन्धी औ' निराले रंग से,
है सदा देती कली दिल को खिला।

(५)

है खटकता एक सबकी आँख में,
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर।

आँख

सूर को क्या अगर उगे सूरज।
क्या उसे, जाए चाँदनी जो खिल ॥
हम अँधेरा तिलोक में पाते।
आँख होते अगर न तेरे तिल ॥

क्या हुआ चौकड़ी अगर भूले।
लख उछल कूद और छल करना ॥
है छकाता छलाँगवालों को।
आंख ! तेरा छलाँग का भरना ॥

काजलों या कालिखों की छूत में ।
कम अछूतापन नहीं तेरा सना ।।
धूल लेकर के अछूते पाँव की ।
ऐ अछूती आंख तू सुरमा बना ।।

जबकि निज मुँह बना लिया काला ।
तब किसी मुँह की क्यों सहे लाली ।।
क्या अजब है अगर मरे जल-जल ।
कलमुँही आंख काजलोंवाली ।।

तू उसे भूलकर गुनी मत गुन ।
जिस किसी को गुमान हो गुन का ।।
जो कि हैं ताकते नहीं सीधे ।
आंख ! मुँह ताक मत कभी उनका ।।

मैथिलीशरण गुप्त

स्वर्गीय संगीत

[गुप्त जी ने इस कविता में कर्म का संदेश दिया है। सुयोग खोना बुरा है। मन को निराश नहीं करना चाहिए। पवन समान तेज चलने में श्रेय है। हमें अपने गौरव को खोना नहीं चाहिए। प्रभु के वरदानों का सदुपयोग करना चाहिए।]

(१)

कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रह के कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(२)

सँभलो कि सुयोग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला ?
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।

अखिलेश्वर है अवलम्बन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(३)

जल तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो।
प्रबलानल ज्यों अनिरुद्ध रहो।
पवनोपम सत्कृतिशील रहो,
अवनीतलवद् धृतिशील रहो।
कर लो नभ-सा शुचि जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(४)

जब हैं तुम में सब तत्त्व यहाँ,
फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ।
तुम स्वत्त्व सुधारस पान करो,
उठ अमरत्व विधान करो।
दव-रूप रहो भव-कानन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

(५)

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
"हम भी कुछ हैं" यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुंजित गान रहे।

कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो, न निराश करो मन को ।

(६)

प्रभु ने तुमको कर दान दिये,
सब वांछित वस्तु-विधान किये ।
तुम प्राप्त करो उनको न ग्रहो !
फिर है किसका यह दोष कहो ।
समझो न अलभ्य किसी धन को,
नर हो, न निराश करो मन को ।

(७)

किस गौरव के तुम योग्य नहीं,
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ।
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
सब हैं जिसके अपने घर के ।
फिर दुर्लभ क्या उसके जनको,
नर हो, न निराश करो मन को ।

(८)

करके विधिवाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरन्तर भेद करो ।
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख का निधि है ।

समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को।

भरत का क्षोभ

[यह कवितांश 'साकेत' महाकाव्य से लिया गया है। भरत कैकेयी के कर्म से दुःखी है। वह अपने को अपमानित मानता है। परन्तु विवश है। कैकेयी और भरत का संवाद बड़ा मार्मिक है।]

आज मैं हूँ कोसलाधिप धन्य,
गा, विरुद्ध गा, कौन मुझ-सा अन्य ?
कौन हा ! मुझ सा पतित-अतिपाप ?
हो गया वर ही जिसे अभिशाप !
तू अड़ी थी राज्य ही के अर्थ ?
तो न था तेरा तनय असमर्थ।
और भू पर था न कोसल मात्र।
छत्र—भागी है कहीं भी क्षात्र।
क्षत्रियों के चाप—कोटि—समक्ष।
लोक में है कौन दुर्गम लक्ष ?
था न किस फल का तुझे अधिकार ?
सुत न था मैं एक, हम थे चार।
राज सुख है बलि पुरुष का भोग।
मूल्य जिसका प्राण का विनियोग।
स्वार्थिनी तू कर सकेगी त्याग ?
राज्य में घर से लगी है आग।

स्वप्न किस का देखते हैं लोग।
जो तजे लोकार्थ निद्रा-योग।
किन्तु करके दूसरों का होम।
पान करना चाहती तू सोम।
हाय ! ऐसी तो न थी तेरी बुद्धि ?
क्या हुई तेरे हृदय की शुद्धि ?
और से करते हुए छल-पाप,
हम छले जाते प्रथम ही आप।
सूर्य कुल में यह कलंक, कठोर।
निरख तो तू तनिक नभ की ओर।
देख तेरी उग्र यह अनरीति।
खस पड़े नक्षत्र ये न सभीति।
भरत-जीवन का सभी उत्साह।
हो गया ठंडा यहां तक आह !
थे गगन के चन्द्रमणि-मय हार,
जान पड़ते हैं ज्वलित अंगार !
कौन समझेगा भरत का भाव—
जब करे मां आप यों प्रस्ताव !
री; उमा तुझको न कुछ संकोच ?
तू बनी जननी कि हननी सोच ?
इष्ट तुझको दृप्त-शासन नीति,
और मुझको लोक-सेवा प्रीति।
बेन होता योग्य जिसका जात,
जड़ भरत—जननी वही विख्यात,

व्यर्थ आशा, व्यर्थ यह संसार,
रो दिया, हो मौन राजकुमार।

कला

[गुप्त जी ने इस कविता में कला में नवीनता की कामना की है। कला से क्या अंकित नहीं होता। चहुँमुखी उन्नति होती है। जड़ता में भी चेतनता आ जाती है।]

आ, नव-नव निर्देश धरे।
अयि करुणामयि कले, कल्पना-कलित ललित-तम केश धरे!

तेरी खींची रेखाओं में क्या-क्या अंकित नहीं हुआ!
चमक उठा वह भीतर बाहर ज्यों ही तूने जिसे छूआ!
बहुरंगिणि तेरे रंगों से कहाँ कौन रस कब न चुआ!
उतर विश्व की आँखों पर तू देश-देश का वेश धरे!
आ, नव-नव निर्देश धरे!

खुला चतुर्दिक नीलगगन-सा चर्चा का चत्वर तेरा।
सुनते हैं आह्वान मुग्ध-से खग-मृग भी सत्वर तेरा।
जड़ भी चेतन हो उठते हैं ऐसा अद्भुत स्वर तेरा,
उतर विश्व की कंठ-नली में सीधा हृदय-निवेश धरे!
आ, नव-नव निर्देश धरे!

अपने ही अन्तस् की कोई किस प्रकार समझे-बूझे!
किस प्रकार उत्साहित होकर अपने अशुभों से जूझे!

कैसे राम और रावण का भिन्न मार्ग हमको सूझे !
उतर विश्व की वाणी में तू आ असंख्य आवेश धरे !
आ नव-नव निर्देश धरे !

किसकी कसक मोहिनी बन कर जन को अमृत पिलाती है ?
तेरी भूमि पत्थरों पर भी कितने कमल खिलाती है।
तू वह माया है, जो उलटा हरि से हमें मिलाती है।
नहीं चन्द्र को, चन्द्रकला को सिर पर स्वयं भवेश भरे !
आ, नव-नव निर्देश धरे !

मातृभूमि

[प्रस्तुत कविता में भारतीय प्रकृति के वैभव का चित्रण करते हुए भारतमाता के प्रति कवि ने राग जागृत करने का प्रयत्न किया है। भारत-भूमि की हरीतिमा, सूर्योदय-सूर्यास्त, मेखला बना हुआ समुद्र, पवन का सुखद प्रभाव, जलधारा आदि सभी में एक अद्भुत सौन्दर्य है। यह वह भूमि है जहाँ भगवान् को भी अवतार लेना अच्छा लगता है। ऐसी प्राकृतिक समृद्धियों और ईश्वरीय आकर्षणों से युक्त यहां के जनवासियों पर भारतमाता का उपकार निस्सन्देह अपरिमित है।]

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट, मेखला रत्नाकर है;
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन है;

करते अभिषेक पयोद हैं,
बलिहारी इस वेश की,
हे मातृभूमि, तू सत्य ही,
सगुण मूर्ति सर्वेश की!

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल, मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है;
षट्-ऋतुओं का विविध-दृश्ययुत अद्भुत क्रम है;
हरियाली का फर्श नहीं मखमल के कम है;

सुचि सुधा सींचता रात में,
तुझ पर चन्द्र प्रकाश है,
हे मातृभूमि, दिन में तरणि,
करता तम का नाश है!

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझपर खिलते हैं,
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं;
औषधियां हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातुवर रत्नों वाली;

जो आवश्यक होते हमें,
मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि, वसुधा धरा
तेरा नाम यथार्थ है!

आते ही उपकार याद है माता तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति भावों का प्रेरा;
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें
मन होता है तुझे उठाकर शीश चढ़ावें ;

वह शक्ति कहां, हा क्या करें,
क्या हमको लज्जा न हो ?
हम मातृभूमि केवल तुझे,
शीश झुका सकते अहो !

माखनलाल चतुर्वेदी

उलाहना

तुम्हीं जब याद की टीसें भुलाते हो
भला फिर प्यार का अभिमान क्यों जीवे ?
तुम्हीं बलिदान के मन्दिर गिराते हो
भला अभिसार का मेहमान क्यों जीवे ?

भुला दीं सूलियाँ ! जैसे ज़माने में
सभी कुछ तालियों से पा लिया तुमने ?
न तुम बहले, न युग बहला, भले साथी
बताओ तो किसे बहला लिया तुमने ?

बड़े रस्ते, बड़े पुल, बाँध क्या कहने
बड़े ही कारखाने हैं, इमारत हैं !
ज़रा पोंछूँ इन्हें, आंसू उभर आये
बड़ापन यह न छोटों की इबारत है।

ज़रा छोटों से घुल-मिलकर रहो जीवन !
बड़े सब मिट गये, छोटे सलामत हैं,
बड़ों से डर, ज़रा छोटों पै मर गाफिल !
बड़ी स्वादिष्ट छोटों की अमानत है।

तुम्हारी चरण-रेखा देखते हैं वे
उन्हें भी देखने का तुम समय पाओ !
तुम्हारी आन पर कुरबान जाते हैं
अमीरी से ज़रा नीचे उतर आओ।

तुम्हारी बाँह में बल है जमाने का
तुम्हारे शब्द में जादू जगत का है।
कभी कुटिया-निवासी बन जरा देखो
कि दलिया न्यौतता रमलू भगत का है।

गयीं सदियाँ कि यह बहती रही गंगा
गनीमत है कि तुमने मोड़ दी धारा !
बड़ी बाढ़ोंमयी उद्दण्ड नदियों की
बना दी पत्थरोंवाली नयी कारा !

उठो, कारा बनाओ अब गरीबी की
रहो मत दूर, अपनों के निकट आओ,
बड़े गहरे लगे हैं घाव सदियों के
मसीहा, इनको ममता भरके सहलाओ !

दूबों के दरबार में

[पृथ्वीतल हरी-हरी दूबों से ऐसा शोभायमान हो रहा है मानो आकाश पृथ्वी पर उतर आया है। ओसकणों से परिपूर्ण दूर्वादल का मनोरम वर्णन इस कविता में मिलता है।]

क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में ?
नीली भूमि हरी हो आई
इस किरणों के ज्वार में !
क्या देखें तरुओं को उनके
फूल लाल अंगारे हैं ;
वन के विजन भिखारी ने
वसुधा में हाथ पसारे हैं।
नक्शा उतर गया है, बेलों
की अलमस्त जवानो का
युद्ध ठना, मोती की लड़ियों
से दूबों के पानी का !
तुम न नृत्य कर उठो मयूरी,
दूबों की हरियाली पर ;
हंस तरस खाएँ उस मुक्ता
बोने वाले माली पर !
ऊँचाई यों फिसल पड़ी है
नीचाई के प्यार में !
क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में ?

: ५५ :

उन्मूलित वृक्ष

भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले,
भला किया, मीठे फल वाले ये तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो, पनपाओ, लगा चुके हो जो कलमें,
भला किया, दुनिया पलटा दी प्रबल उमंगों के बल में।
लो, हम तो चल दिये नये पौधो-प्यारो ! आराम करो।
दो दिन को दुनिया में आये, हिलो-मिलो, कुछ काम करो !
पथरीले ऊँचे टीले हैं, रोज नहीं सींचे जाते,
वे नागर न यहाँ आते हैं, जो ये बागीचे आते।
झुकी टहनियाँ तोड़-तोड़कर, वनचर भी खा जाते हैं,
शाखामृग कन्धों पर चढ़कर भीषण शोर मचाते हैं।
दीन-बन्धु की कृपा बन्धु जीवित है, हां हरियाली है।
भूले-भटके कभी गुजरना हम वे ही फल वाले हैं॥

जयशंकर प्रसाद

आत्म-कहानी

[आत्म-कहानी कवि के विफल-प्रेमजन्य अन्तर्व्यथा की कहानी है। संसार का यह नियम है कि वह दूसरों की भूलों का, विशेषकर प्रेम के सन्दर्भ में, उपहास करता है। अतः कवि आत्म-बीती को प्रत्यक्ष करने में हिचकता है। उसे अभिव्यक्त कर अपने अन्तर के रस को कम नहीं करना चाहता। उसकी कहानी को सुनकर लोग तो आनन्द पायेंगे, परन्तु स्वयं उसका आनन्द घट जायेगा। अतः वह अपनी प्रेम-व्यथा को मूक ही रखना चाहता है।]

मधुप गुनगुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझाकर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।

इस गम्भीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन-इतिहास—
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य-मलिन उपहास।

तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती !
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे—यह गागर रीती।

किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले।

यह विडम्बना ! अरी सरलते तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं।
भूलें अपनी, या प्रवंचना औरों की दिखलाऊँ मैं।

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनीं रातों की।
अरे खिलखिला कर हँसते होने वाली उन बातों की।

मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिंगन में आते-आते मुस्क्याकर जो भाग गया ?

जिसके अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में।
अनुरागिनी उषा लेती थी जिन सुहाग मधुमाया में।

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड़कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ?

छोटे-से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ ?

सुनकर क्या तुम भला करोगे—मेरी भोली आत्म-कथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ?

गीत लहरी

[प्रस्तुत गीत नवजागरण का गीत है। कवि जन-जीवन में नवजागरण व्यंजन की चेतना की किरण का विकास देखता है जिसका स्वागत करने के लिए व्यक्तियों को उद्‌बोधित करता है। अब तक पराजय और निराशा में जो हम पड़े रहे हैं, उन्हें त्यागने के लिए उत्साहित करता है]

अब जागो जीवन के प्रभात !
वसुधा पर ओस बने बिखरे हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे,
ऊषा बटोरती अरुण गात ! अब जागो जीवन के प्रभात !
तम-नयनों की तारायें सब—मुंद रहीं किरण दल में हैं अब,
चल रहा सुखद यह मलय वात ! अब जागो जीवन के प्रभात !
रजनी की लाज समेटो तो, कलरव से उठकर भेंटो तो,
अरुणांचल में चल रही वात ! जागो अब जीवन के प्रभात !

हमारा देश

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते रहते जब जग कर रजनी भर तारा।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

ठूँठ

[ठूँठ के मिस यहाँ कवि ने गत-वैभव या गत-यौवन जीवन की सारहीनता का चित्रण किया है। जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते-टहनियाँ सूख जाने पर वह रूखा लगता है, वह किसी को छाया-सुख नहीं प्रदान कर सकता, वैभव मिट जाने पर मनुष्य की भी वैसी ही गति हो जाती है।]

ठूँठ यह है आज।
गयी इसकी कला,
गया है सबल साज ?

अब यह वसन्त से होता नहीं अधीर,
पल्लवित, झुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं हैं तीर,
छाँह में बैठते नहीं पथिक आह भर,
झरते नहीं यहाँ दो प्रणणियों के नयन-नीर

केवल वृद्ध विहग एक
बैठता कुछ कर याद!

सन्ध्या-सुन्दरी

[प्रस्तुत कविता में संध्या का प्रकृति-वर्णन हुआ है। संध्या का मानवीकरण करते हुए कवि ने संध्याकालीन प्रकृति का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया है। इस कविता में संध्या का तिमिर, शान्ति और नीरवता साकार हो उठी है।]

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या—सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु जरा गम्भीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदयराज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप,'
है गूँज रहा सब कहीं—

व्योम-मण्डल में—जगतीतल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अतिविस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप, चुप, चुप'—
है गूँज रहा सब कहीं,
और क्या है ? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
खिलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने;
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

विधवा

[प्रस्तुत कविता में भारतीय विधवा नारी की करुण दशा अंकित है। पति से छिन्न होकर उसका जीवन निराधार हो जाता है। उसके जीवन की दयनीयता को देखकर कठोर काल के प्रहार का प्रत्यक्ष रूप देखने को मिलता है। उसका आजीवन का वैधव्य उसे करुणा की साकार मूर्ति बना देता है।]

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।
षड्ऋतुओं का शृंगार
कुसुमित कानन में नीरव-पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है
उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।
हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें;
देखा तो भीगीं मन-मधुकर की पाँखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुंजार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार !
उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का, मौन बढ़ाकर
अति छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को—

दुख रूखे-सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में;
दुख सुनता है आकाश धीर,
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहकर।
कौन उसको धीरज दे सके,
दुख का भार कौन ले सके ?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव, अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु-जल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?
ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

भिक्षुक

[यह एक प्रगतिवादी गीत है। इसमें एक भिखारी की हीनावस्था का मार्मिक चित्रण हुआ है। गीत में करुणा उमड़ी पड़ती है।]

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,

मुट्ठीभर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये ।
भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता—भाग्य-विधाता से क्या पाते ?—
चाट रहे झूठी पत्तल वे कभी खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।

सुमित्रानन्द पन्त

वसन्त

चंचल पग दीप-शिखा के धर गृह, मग, वन में आया वसन्त !
सुलगा फाल्गुन का सूनापन, सौन्दर्य शिखाओं में अनन्त !
सौरभ की शीतल ज्वाला से फैला उर-उर में मधुर दाह
आया वसन्त, भर पृथ्वी पर, स्वर्गिक सुन्दरता का प्रवाह ।
पल्लव पल्लव में नवल रुधिर, पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली-नीली लौ से पुष्पों के चित्रित दीप जला ।
अधरों की लाली से चुपके कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया पंखड़ियों को काले-पीले धब्बों से सहज सजा !
कलि के पलकों में मिलन स्वप्न, अलि के अन्तर में प्रणय गान
ले कर आया, प्रेमी वसन्त—आकुल जड़-चेतन स्नेह प्राण !
काली कोकिल !—सुलगा उर में स्वरमयी वेदना का अँगार,
आया वसन्त घोषित दिगन्त करती, भर पावक की पुकार ।
आः, प्रिये! निखिल ये रूप रंग, रिलमिल अन्तर में स्वर अनंत,
रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति उसकी छाया, आया वसन्त ।

('पल्लविनी' से)

तप

तप रे मधुर मधुर मन !

विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,

जग-जीवन की ज्वाला में गल,

बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल, तप रे विधुर विधुर मन !

अपने सजल स्वर्ण से पावन,

रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,

स्थापित कर जग में अपनापन, ढल रे ढल आतुर मन !

तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,

गन्धहीन तू गन्ध-युक्त बन,

निज अरूप में भर स्वरूप, मन, मूर्तिवान बन, निर्धन !

गल रे गल निष्ठुर मन !

('गुंजन' से)

अवगाहन

मैं सुन्दरता में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण,

वह बने न बंधन !

जिस स्वर्ग विभा का करता मन आवाहन,

उस रूप शिखा में जले न प्राण शलभ बन,

तुम मुझे घेर के बरसो, शोभा की घन,

मैं उर-शोभा में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण !

तुम प्रीति दान कर सको बनूँ मैं निर्भय,

तुम हृदय दे सको पूजूँ मैं निःसंशय,

मत दो केवल मधु स्वप्नों का सम्मोहन,
मैं अमर प्रीति में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण!

उद्बोधन

मानव भारत हो नव भारत, जन मन धरणी सुन्दर,
नवल विश्व हो वह आभा-रत, सकल मानवों का घर !
जाति पाँति देशों में खंडित भू जन,
धर्म नीति के भेदों में बिखरे मन,
नव मनुष्यता में हों मज्जित जीर्ण युगों के अन्तर,
विचरें मुक्त हृदय, अंतःस्मित, प्रीति युक्त नारी नर !
लोक चेतना ज्वार बढ़ रहा प्रतिक्षण,
स्वप्नों के शिखरों पर कर युग नर्तन ।
तड़क रहीं हथकड़ियाँ झनझन मन के पाश भयंकर,
अग्नि-गर्भ युग-शिखर विकट फटने को है, छोड़ो डर !
आज समापन युग का वृत्त पुरातन,
भू पर संस्कृति चरण धर रही नूतन,
रँग रँग की आभा-पंखड़ियाँ बरसाता झुक अंबर,
खोलो उर के रुद्ध द्वार, जन, हँसता स्वर्ण युगांतर !
विश्व मनःसंगठन हो रहा विकसित,
जन जीवन संचरण ऊर्ध्व, भू विस्तृत,
नव्य चेतना केतु फहरता, सत रँग द्रवित दिगंतर;
आदर्शों के पोत बढ़ रहे, पार अतल भव सागर !

स्वर्ग भूमि हो भू पर भारत जन मन धरणी सुन्दर,
अंतर ऐश्वर्यों से मंडित मानव हो देवोत्तर !

भू स्वर्ग

तुम किन आकाशों में मन को ले जाती हो नीलिमा तरल !
तह तह मुझको नीहार रजत ढँक लेता खुल उर सा कोमल !
अंतर आभाओं के पथ से उठता मन नीरव ध्यान चरण,
स्वप्नों की कलियाँ रोओं में हँसतीं भर सौरभ सुर मादन !
कँपता उर, लगते तड़ित स्पर्श चेतना जलधि के हर्ष चपल,
बरसातीं शत ऊषा लाली स्वर्गिक वातायन से उज्ज्वल !
टूटते शिखर पर मानस के रँग रँग के छाया रव निर्झर,
नव सुषमा, प्रीति मधुरिमा से भर जाता ज्योति द्रवित अंतर !
मैं उतर, देखता चकित नयन रवि आभा में डूबी धरती,
हरियाली के चल अंचल में किरणें स्वप्नों के रँग भरतीं।
भू की अतृप्त अंतर ज्वाला फूलों में विहँस रही सुन्दर,
आकांक्षा का आकुल क्रन्दन मधुकर में गूँज रहा मनहर
वह मिट्टी की शय्या में जग भरती प्रकाश में अँगड़ाई,
मुकुलित अंगों में फूट रही उत्तम स्वर्ग की तरुणाई !
वह देवों के उपभोग हेतु मिथ खोल रही निज वक्षःस्थल,
उसके प्राणों का हरित तिमिर जीवन में निखर रहा उज्ज्वल !
वह मानवीय बन उभर रही पा स्पर्श निर्जरों का चेतन,
वह बनी शिला से मातृ मूर्ति उर में करुणा का संवेदन !

आकाश झुक रहा धरती पर बरसा प्रकाश के उर्वर कण,
धरती उसके उर में बुनती छाया का सतरंग सम्मोहन !
हो रहा स्वर्ग से धरती का जड़ से चेतन का रहस मिलन,
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः सुरगण नर-तन करते धारण !

('उत्तरा' से)

स्वाधीनता चेतना

जागो हे स्वाधीन चेतने, जन मन शौर्य जागाओ,
भारत की आलोक शिखे, नव युग के चरण बढ़ाओ !

तेरे उन्मद पद चालन से झरें मृत्यु भय संशय,
अंग-भंगि से जीवन की शोभा फूटे मंगलमय !
हाव भाव से नव आशा नव अभिलाषा बरसाओ !

तेरे श्वासों में ज्वाला हो, अधरों में मधु मादन,
भ्रू विलास बलिदान, स्निग्ध चितवन हो नव संजीवन !

इंगित पर जन शीश झुकें, जन शीश उठें तुम आओ !
तेरी हिंसा रहे अहिंसक जग जीवन के रण में,
बजे सत्य की भेरी दुबिधा मौन चीर जन मन में !
मर्त्यों की दुर्बलता हर, जीवन अवसाद मिटाओ !

रूढ़ि रीति के मुंड हृदय में ज्योति खड्ग हो कर में,
पदतल पर नत मृत्यु भीति हो, जीवन रुधिर अधर में !
रक्त पात्र से फिर नव चेतन अरुण ज्वाल छलकाओ !

पाप पुण्य, परिभाषा मिथ्या स्वर्ग मुक्ति आशा हर,
आत्मा का अमरत्व बता जीवन के मन के भीतर !
हे युग युग संभवे, विश्व को नव सन्देश सुनाओ !

देख रहा मैं काल दंश, कट रहे युगों के बंधन,
उर उर में मच रहा महाभारत,—यह विश्व विवर्तन !

कोटि कंठ मिल कर वन्दे मातरम् निनाद गुँजाओ।
काँप रहे युग युग के भूधर, डुबा रहा तट सागर।
गरज रहा जन मन का नभ फिर धूमिल वाष्पों से भर।
विद्युत् लासिनि, जागो इंद्रधनुप्रभ तिरंग फहराओ।
भारत की स्वाधीन चेतने, जन मन ज्योति जगाओ।

('युगपथ' से)

गीत

रश्मि चरण धर आओ।
प्राणों के घन, अंधकार तप स्वर्ण शुभ्र मुसकाओ।
निःस्वर ताराओं के नूपुर, रणित पवन वीणाओं के सुर,
अग्नि विहंगम मनः क्षितिज में ज्योति पंख फैलाओ।

अनाहूत हे, अविज्ञात हे, लपटों में लिपटे प्रभात हे,
स्वर्गदूत-से उतर, हृदय की गोपन व्यथा मिटाओ।
पावक परिमल के वसंत हे, मधु ज्वालाओं के दिगन्त हे,
मानस के सूने पतझर को शोभा में सुलगाओ।

किरणोज्ज्वल कंटककिरीट धर विचरो तम पंकिल भूमग पर,
प्राणों के निर्मल याचक हे, जीवन रज लिपटाओ।
खोलो अंतर के तन्द्रिल पद, स्वर्ग सुरा से भरो रश्मि घट,
नव स्वर लय गति में जीवन को स्वप्न मुखर कर जाओ।

('अतिमा' से)

महादेवी वर्मा

परिचय

मैं नीर भरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरणी मचली !

मेरा पग पग संगीत-भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली !

मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बना अविरल,
रज कण पर जल-कण हो बरसो
नवजीवन अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

स्मृति

जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु-बयार !

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डल का आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग,

यूथी की मीलित कलियों से,
अलि, दे मेरी कबरी सँवार !

पाटल के सुरभित रंगों से रँग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल,
गुँथ दे रसना में अलि-गुंजन से पूरित झरते बकुल-फूल,

रजनी से अंजन माँग सजनि,
दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक-लोचन से सींच-सींच नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ में हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाल,

कण्टकित रसालों पर उठता—
है पागल पिक मुझ को पुकार !
लहराती आती मधु-बयार ।

सुभद्राकुमारी चौहान

बचपन

बार-बार आती है मुझको, मधुर याद बचपन तेरी ।
गया, ले गया तू जीवन की, सबसे मस्त खुशी मेरी ॥
चिंतारहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छंद ।
कैसे भूला जा सकता है, बचपन का अतुलित आनंद ॥
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआछूत किसने जानी ।
बनी हुई थी, अहा झोंपड़ी, और चीथड़ों में रानी ॥
रोना और मचल जाना भी, क्या आनंद दिखाते थे ।
बड़े-बड़े मोती से आँसू, जयमाला पहनाते थे ॥
दादा ने चंदा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे ।
धुली हुई मुस्कान देखकर, सबके चेहरे चमक उठे ॥
आजा बचपन एकबार फिर, दे-दे अपनी निर्मल शांति ।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली, वह अपनी प्राकृत विश्रांति ॥
वह भोली-सी मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप ।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का संताप ॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी ।
नंदन-वन-सी फूल उठी वह, छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
'माँ ओ' कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी ।
कुछ मुँह में, कुछ लिये हाथ में, मुझे खिलाने आई थी ॥

पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय गर्व था झलक रहा ।।
मैंने पूछा 'यह क्या लाई', बोल उठी वह 'माँ काओ' ।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा 'तुम्हीं खाओ' ।।
पाया बचपन मैंने फिर से, बचपन बेटी बन आया ।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया ।।
मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ, तुतलाती हूँ ।
मिलकर उसके साथ स्वयं, मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ।।

वीरों का वसन्त

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू-नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर वेष में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि अन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझ में क्यों लगी आग,
ए कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

हल्दीघाटी के शिला-खण्ड,
ए दुर्ग, सिंहगढ़ के प्रचण्ड,
राणा नाना का कर घमण्ड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हन्त !
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

: ३८ :

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटि तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन् सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

कानपूर के नाना की, मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,

वीर शिवाजी की गाथाएँ
उसको याद जबानी थीं,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुलदेवी उसकी
भी आराध्य भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाईं झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावली-सी वह आई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया,
शिव से मिली भवानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं!
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी दया नहीं आई।
निःसन्तान मरे राजा जी
रानी शोक-समानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसनें यह अच्छा अवसर पाया,
फौरन फौज भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया ।

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा
झाँसी हुई विरानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,

रानी दासी बनी और यह
दासी अब महारानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।

छिनी राजधानी देहली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,

उदैपूर, तंजोर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जबकि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,
बंगाले मद्रास आदि की
भी तो वही कहानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी——
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

रानी रोईं रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेजार,
उनके गहने कपड़े विकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे-आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अखबार,
'नागपुर के ज़ेवर ले लो' 'लखनऊ के लो नौलख हार'
यों परदे की इज़्जत परदेशी
के हाथ बिकानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुंह
हमने सुनी कहानी थी——
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्धू पन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहन छबीली ने रण-चंडी का कर दिया प्रकट आह्वान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो
सोई ज्योति जगानी थी।

बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी।
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थीं,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपुर कोल्हापुर में भी,
कुछ हलचल उकसानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

इस स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना, धुन्धू पन्त, ताँतिया चतुर, अजीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिमान,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाती,
उनकी जो कुरबानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

इनको गाथा छोड़, चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वौकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,

जख्मी होकर वौकर भागा,
उसे अजब हैरानी थी;
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,

अँग्रेज़ों के मित्र सिन्धिया
ने छोड़ी राजधानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

विजय मिलो, पर अंग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
राना और मुन्दरा सखियाँ रानी के संग आई थीं,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,

पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया,
हाय ! घिरी अब रानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य से पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतनें में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार,
घायल होकर गिरी सिंहनी
उसे वीरगति पानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

रानी गई सिधार, चिता उसकी अब दिव्य सवारी थी,
मिला तेज-से-तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता-नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई
हमको जो सीख सिखानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी--

खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।
जाओ रानी! याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी,
तू खुद अमिट निशानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी——
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

दिनकर

स्वाधीन भारत की सेना

[यह काव्यावतरण 'दिनकर' द्वारा रचित 'नीम के पत्ते' नामक काव्य से उद्धृत है। इसमें भारतीय जवानों के शौर्य का भावपूर्ण चित्रण हुआ है। भारतीय युवकों की वीरता का आदर्श मातृभूमि की रक्षा में बलिदान होना है। भारतीय वीर जवान अकारण किसी दुर्बल जाति या राष्ट्र को सताने में अपना शौर्य नहीं दिखलाते हैं प्रत्युत विश्व में शांति स्थापित करने में अपना जौहर दिखलाते हैं। वे आततायियों का संहार करने में अपना तेज प्रदर्शित करते हैं। स्वाधीन भारत की सेना का यही आदर्श है।]

जाग रहे हम वीर जवान,
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान !

हम प्रभात की नई किरण हैं, हम दिन के आलोक नवल,
हम नवीन भारत के सैनिक, धीर, वीर, गंभीर, अचल।
हम प्रहरी ऊँचे हिमाद्रि के, सुरभि स्वर्ग की लेते हैं।
हम हैं शान्तिदूत धरणी के, छांह सभी को देते हैं।
वीर-प्रसू माँ की आँखों के हम नवीन उजियाले हैं।
गंगा, यमुना, हिन्द महासागर के हम रखवाले हैं।

तन, मन, धन तुम पर कुर्बान,
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान !

हम सपूत उनके, जो नर थे अनल और मधु मिश्रण,
जिनमें नर का तेज प्रखर था, भीतर था नारी का मन।
एक नयन संजीवन जिनका, एक नयन था हालाहल
जितना कठिन खड्ग था कर में, उतना ही अन्तर कोमल
थर-थर तीनों लोक काँपते थे जिनकी ललकारों पर,
स्वर्ग नाचता था रण में जिनकी पवित्र तलवारों पर

हम उन वीरों की संतान,
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान!

हम शकारि विक्रमादित्य हैं अरिदल को दलने वाले।
रण में जमीं नहीं, दुश्मन की लाशों पर चलने वाले।
हम अर्जुन, हम भीम, शांति के लिए जगत् में जीते हैं।
मगर, शत्रु हठ करे अगर तो, लहू वक्ष का पीते हैं।
हम हैं शिवा-प्रताप, रोटियाँ भले घास की खायेंगे,
मगर किसी जुल्मी के आगे मस्तक नहीं झुकायेंगे।

देंगे जान, नहीं ईमान,
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान!

जियो, जियो अय देश! कि पहरे पर ही जगे हुए हैं हम।
वन, पर्वत, हर तरफ चौकसी में ही लगे हुए हैं हम।
हिंद-सिंधु की कसम, कौन इस पर जहाज ला सकता है?
सरहद के भीतर कोई दुश्मन कैसे आ सकता है?
पर की हम कुछ नहीं चाहते, अपनी किंतु बचायेंगे।
जिसकी उँगली उठी, उसे हम यमपुर को पहुँचायेंगे।

हम प्रहरी यमराज-समान,
जियो, जियो अय हिन्दुस्तान!

चाँद और कवि

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है।
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते;
और लाखों बार तुझ-से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का,
आज बनता और कल फिर फूट जाता है;
किंतु, तो भी धन्य; ठहरा आदमी ही तो !
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है।

मैं न बोला, किंतु, मेरी रागिनी बोली,
चाँद ! फिर से देख, मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं ? है यही पानी ?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू ?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ;
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह, दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है;
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
"रोज़ ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं ये;
रोकिये, जैसे बने, इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं ये।"

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति ! मेरे विशाल
साकार, दिव्य, गौरव विराट !
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त
युग-युग गर्वोन्नत, महान्,
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किस महिमा का वितान?

कैसी अखंड यह चिर-समाधि ?
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान !
तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान
उलझन का कैसा विषम जाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ, मौन तपस्या लीन यती !
पल-भर को तो कर दृगोन्मेष !
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।

सुखसिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार !

जिसके द्वारो पर खड़ा क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार ।
'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार' ।

उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे ! आन पड़ा संकट कराल;
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं ? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष !
तू ध्यान-मग्न ही रहा इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश !

ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट ! हुंकार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद !

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल,
नव युग-शंखध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग मेरे विशाल !

मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
नव युग-शंखध्वनि जगा रही !
जागो नगपति ! जागो विशाल !

बच्चन

मधुशाला

भावुकता - अंगूर - लता से
खींच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साकी आया
भरकर कविता का प्याला ।

कभी न कण-भर खाली होगा,
लाख पिएँ, दो लाख पिएँ!
पाठक - गण हैं पीनेवाले,
पुस्तक मेरी मधुशाला ।।

मधुर भावनाओं की सुमधुर
नित्य बनाता हूँ हाला,
भरता हूँ इस मद से अपने
ही उर का प्यासा प्याला ।

उठा कल्पना के हाथों से
स्वयं इसे पी जाता हूँ,
अपने ही में हूँ मैं साकी,
पीनेवाला मधुशाला ।।

धर्म-ग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मन्दिर, मस्जिद, गिरजे सबको
तोड़ चुका जो मतवाला;

पण्डित, मोमिन, पादरियों के
फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला ॥

सूर्य बने मधु का विक्रेता,
सिंधु बने घट, जल हाला,
बादल बन बन आये साकी,
भूमि बने मधु का प्याला।

झड़ी लगाकर बरसे मदिरा
रिमझिम रिमझिम रिमझिम कर,
बेलि, विटप, तृण, बन मैं पीऊँ,
वर्षा-ऋतु हो मधुशाला ॥

मुसलमान औ' हिन्दू हैं दो,
एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय,
एक मगर उनकी हाला।

दोनों रहते एक न जब तक
मन्दिर - मस्जिद में जाते,
लड़वाते हैं मन्दिर - मस्जिद,
मेल कराती मधुशाला ॥

मैं मदिरालय के अन्दर हूँ,
मेरे हाथों में प्याला,
प्याले में मदिरालय बिम्बित
करनेवाली है हाला,

इस उधेड़बुन में ही मेरा
सारा जीवन बीत गया—
मैं मधुशाला के अन्दर या
मेरे अन्दर मधुशाला !

वह हाला, कर शान्त सके जो
मेरे अन्तर की ज्वाला,
जिसमें मैं बिंबित-प्रतिबिंबित
प्रति-पल, वह मेरा प्याला।

मधुशाला वह नहीं जहाँ पर
मदिरा बेची जाती है,
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला!

जितनी दिल की गहराई हो
उतना गहरा है प्याला,
जितनी मन की मादकता हो
उतनी मादक है हाला,

जितनी उर की भावुकता हो
उतना सुन्दर साकी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है
उतनी रसमय मधुशाला!

कुचल हसरतें कितनी अपनी,
हाय, बना पाया हाला,
कितने अरमानों को करके
खाक बना पाया प्याला,

पी पीनेवाले चल देंगे,
हाय न कोई जानेगा—
कितने मन के महल ढहे तब
खड़ी हुई यह मधुशाला!

जो बीत गई

(१)

जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,

वह डूब गया तो डूब गया;
अम्बर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गये, फिर कहाँ मिले;
पर बोलो, टूटे तारों पर

कब अम्बर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(२)

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,

वह सूख गया तो सूख गया;
मधुवन की छाती को देखो,

सूखीं इसकी कितनी कलियाँ,
मुरझाईं कितनी वल्लरियाँ,

जो मुरझाईं, फिर कहाँ खिलीं,
पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(३)

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया ;
मदिरालय का आँगन देखो ,
कितने प्याले हिल जाते हैं ,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं ,
जो गिरते हैं, कब उठते हैं ;
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(४)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए ,
मधु-घट फूटा ही करते हैं ,
लघु जीवन लेकर आये हैं ,
प्याले टूटा ही करते हैं ,

फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं, मधु-प्याले हैं,
जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

आरसीप्रसाद सिंह

जागरण-शंख

मातृभूमि के पहरेदारो,
हिमवानो, तुम जागो तो।
आसमान को छूनेवाले
पाषणो, तुम जागो तो।

तुम जागो तो, नव भारत के जन-जन का जीवन जग जाए।
तुम जागो तो, जन्मभूमि की माटी का कण-कण जग जाए।
तुम जागो तो, जग का आँगन दीपों से जगमग हो जाए,
बैरी के पैरों के नीचे से धरती डगमग हो जाए।

युग-तरुणाई ले अँगड़ाई,
तूफानो तुम जागो तो।
मातृभूमि के पहरेदारो,
हिमवानो, तुम जागो तो।

खेत-खेत में सोना बरसे, आँगन-आँगन में मोती।
शिखर-शिखर पर नई किरण की आज सरस वर्षा होती।
नव उमंग जागे प्राणों में, स्वर नवीन हुंकार उठे।
जन-भारत वनराज जागकर आज विमुक्त दहाड़ उठे।

कर जागे, करवाल जगे,
ओ दीवानो, तुम जागो तो।
मातृभूमि के पहरेदारो,
हिमवानो, तुम जागो तो।

तुम जागो तो मानसरोवर जाग उठे, कैलास जगे,
बमभोले प्रलयंकर शंकर का ताण्डव-उल्लास जगे।
भारतवासी का तन जागे, तन में यौवन-रक्त जगे।
मन्दिर का भगवान जगे औ' देवालय का भक्त जगे।

ओ अजेय उन्नत भारत के
अरमानो, तुम जागो तो
मातृभूमि के पहरेदारो,
हिमवानो, तुम जागो तो।

शब्दार्थ

कबीरदास

साखी : साईं ते=ईश्वर से, परमात्मा-से, बन्दे ते=मनुष्य से, नियरे=समीप, पास, सुभाय=स्वभाव, छिमा=क्षमा, कर का=हाथ का, पंथी=पथिक, चाकी=चक्की, पाहन=पत्थर, पहार=पहाड़, लहँड़े=झुण्ड, कीरी=चींटी, कुंजर=हाथी, सूप=छाज, धूरि=धूल, गज=हाथी, बाजि=घोड़े, बिरानि=औरों की, दूसरों की ।

सूरदास

विनय के पद : अविगत=ब्रह्म, अन्तरगत=भीतर ही भीतर, अमित=असीम, तोष=संतोष, अगोचर=जो इन्द्रियों से न जाना जा सके, चकृत=चंचल, औगुन=अवगुण, दोष; समदरसी=सब को एक सा देखने वाला, पारस=एक पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। कंचन=सोना, नार=नाला, सुरसरि=देवनदी, गंगा; भुजंग=सांप, कागहि=कौए को, स्वान=कुत्ता, खर=गधा, अरगजा=चन्दन-केसर को मिला कर बनाया गया सुगन्धित लेप, मरकट=बन्दर, निषंग=तूणीर, तरकस; खल=दुष्ट, कामरी=कमली ।

बाल-लीला : अधर=होंठ, नन्दभामिनि=नन्द की पत्नी, दाऊ=कृष्ण का बड़ा भाई बलराम, रिस=क्रोध, रीझना=प्रसन्न

होना, धूत=छली, पाखण्डी, सांटि=छड़ी, सोटी, सिव=शिव, विरंचि=ब्रह्मा।

गोपी-विरह : दह्यो=जलाए, अलि=भंवरा, जलसुत=कमल, सारंग=हिरन, बासर=वार, दिन; रैनि=रात, अनियारो=पैना, तीखा; स्वाति बूंद=स्वाति नक्षत्र से होने वाली वर्षा की बूंद, ह्यांते=यहां से, समोधे=रोके, मसि=स्याही।

तुलसीदास

लक्ष्मण-परशुराम संवाद : खरभरु=खलबली, महीपन्ह=राजाओं को, लबा=बटेर, लुकाने=छिप गए, रिसबस=क्रोधवश, वृषभकन्ध=बैल के समान पुष्ट कन्धे, उर=हृदय, तून=तूणीर, भृगुपति=परशुराम, भुआला=राजा, भूपाल; मारमदमोचन=कामदेव के अहंकार को दूर करने वाले, चापखण्ड=धनुष के टुकड़े, तोरा=तोड़ा, बेगि=शीघ्र, अरध निमेष=आधा क्षण, कलप सम=युग के समान, आयसु=आदेश, सहसबाहु=सहस्रबाहु, रिपु=शत्रु, त्रिपुरारि=शिव, बिदित=ज्ञात, महि=पृथ्वी, देवन्ह=देवों को, पहारु=पहाड़ को, सरासन=तूणीर, तरकस; अपकीरति=अपयश, कोटि-कुलिस=करोड़ों कुठार, गिरा=वाणी, निज कुल घालक=अपने कुल का नाशक, जनावहिं=जानते हैं, गाधिसूनु=विश्वामित्र, अयमय=लौहमय, गुररिनु=गुरु का ऋण, कोप-कृसानु=क्रोधाग्नि, नखसिख=पैर से सिर तक, कालकूट=भयंकर विष, दाया=दया, चाप=धनुष, मष्ट=मौन, विसरष=विष, कनकघटु=सोने का घड़ा, जोरि जुग-पानी=दोनों हाथ जोड़कर, बररै=बर्रे, अनैसे=बुरे भाव से, रवनि=रमणी, सौमित्री=सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण, जमपुर=यमपुर, अवनिद=राना, नृप-ढोटा=राजा का लड़का।

रामचरित—बालविनोद : आरि=जिद।

अयोध्या-त्याग : कागर=कागज। राजिव-लोचन=कमल-नेत्र,

बटाऊ=पथिक, निकसी=निकल कर, पर्न=पर्ण ।

बन मार्ग में राम : पाहन=पत्थर, अयानी=अजान, अज्ञानी ।

लंका-दहन : बालधी=पूंछ, दामिनी=बिजली, कृसानुसरि=आग के समान, जातुधान=यातुधान, राक्षस ।

दैन्य, सामर्थ्य और आत्मबोध : द्रवै=द्रवित होना, दया कर, सरिस=समान, दससीस=दसशीश, रावण, अरपि=अर्पणकर, विषय-वारि=विषय रूपी जल, मन-मीन=मनरूपी मछली, दारुनि=कठोर, जोनि=योनि, स्रुति=वेद, रजु=रस्सी ।

रहीम

दोहावली : रिस=क्रोध, निरस=नीरस, रसहीन, स्वादहीन; बांस की, फांस=बांस की बारीक सीक, दाव=आग, कदली=केला, जलधि=समुद्र, करुए=कड़वे, हन्यो=मारा, गात=अंग, बापुरो=बेचारा, बारे=जलाने पर, जन्म लेने पर, बढ़े=बड़ा होने पर, बुझने पर, वमन=उल्टी, कै, स्वान=कुत्ता, उदधि=समुद्र ।

रसखान

सवैया : पाग=पगड़ी, हिय=हृदय पर, अधरा=होंठ, छाजति=छा जाती है, दुति=चमक, रिचा=वैदिक मन्त्र, सुक=शुकदेव, मिस=बहाने, लकुटी=लाठी ।

बिहारी

दोहे : जातरूप=सुन्दर, अरुन=लाल, अरुण, बरन=वर्ण; रंग, कनक=सोना, उदोतु=चमक, सौन्दर्य, चिबुक=ठोडी, छाक्यौ=छका, मुदित=प्रसन्न, सुखमा=सुषमा, मधु=शहद, मधुकर=भौंरा, चहुँ ओर=चारों ओर, प्रसून=फूल ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यमुना वर्णन : तरनि-तनूजा=यमुना, तमाल=यमुना के किनारे होने वाला एक सदा बहार वृक्ष, तरुवर=सुन्दर वृक्ष, किधौं=किंवा, उझकि=उझककर, लखत=देखता है, मनु=मानो, सेवालन=शैवाल, सिवार, काई, गोभा=अंकुर, जेहि=जिस, छिन=क्षण, निसि=रात्रि, अवनि=पृथ्वी, तान=ताना, लोल=चंचल, मुकुर=दर्पण, दुरि=दूर, बालगुड़ी=पतंग, आतप=धूप, वारन=दूर करना, धावती=भागती है। इत-उत=इधर-उधर, कोऊ=कोई, ब्रज-रमनी=ब्रज की सुन्दरी, आवती=आती है। ढिग=समीप, जुग-पच्छ=कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष, कालिंदी=यमुना, निसिपति=चन्द्रमा, कलहंस=सुन्दर हंस, मज्जत=स्नान करता है, पारावत=कबूतर, कारंडव=क्रोंच पक्षी, बक=बगुला, सुक=तोता, पिक=कोयल, शेर=शोर, कलरव, भ्रमरावलि=भौंरों की पंक्ति, चक्रवाक=चकवा, रासि=राशि=, बालुका=रेत, बालू, सरस=सुन्दर, चिकुरन=बाल, परत=पड़ता है, लखात=दिखाई देता है, प्रतच्छ=प्रत्यक्ष, तासों=उससे, मल्ल=पहलवान, दृग=नेत्र, धारि=धारण कर, मुकुरमय=दर्पण की तरह।

भाषा-ज्ञान : मूढ़=मूर्ख, यामें=इसमें, अमित=असीम, मतहू=मत, विचारधारा, माहिं=में, ताहीं=उसमें।

हरिऔध

क्या से क्या : वाँ=वहां, गड़हियों=छोटे-छोटे गड्ढों में, टालटूल=टालमटोल, मोथे=इस प्रकार की जड़ी, मथना=बिलौना।

फूल और कांटा : वर-वसन=उत्तम वस्त्र, श्यामतन=काला शरीर, अनूठा=अनोखा, सुर-सीस=देवता के मस्तक पर।

आंख : तिलोक=त्रिलोक, तीनों लोक, गुमान=अभिमान, घमण्ड।

मैथिलीशरण गुप्त

स्वर्गीय संगीत : तुल्य=समान, अवलम्बन=सहारा, अखिलेश्वर=परमपिता परमात्मा, अनिरुद्ध=बेरोक, स्वच्छन्द; धृतिशील=धैर्यशील, शुचि=पवित्र, अलभ्य=अप्राप्य, गौरव=सम्मान, निधि=सम्पत्ति, निष्क्रिय=बेकार, कर्महीन, अवनितल=पृथ्वी-तल, सत्व=अस्तित्व ।

भरत का क्षोभ : कोसलाधिप=कौशल राज्य का अधिकारी, पतित=नीच, गिरा हुआ; तनय=पुत्र, लक्ष=लक्ष्य, विनियोग=प्रयोग, निरख=देख, सभीति=भययुक्त, भय से; खस=खिसक, अनरीति=अनीति ।

कला : नव-नव=नए-नए, निर्देश=संकेत, आदेश, कले ! = 'कला' का सम्बोधन, बहुरंगिणि=कई रंगों वाली, चुआ=बहा, चत्वर=चौकोर स्थान, सत्वर=सदा, हमेशा, अन्तस=अन्तर्मन, भवेश=शिव, भरे=धारण किए ।

मातृभूमि : नीलाम्बर=नीला आकाश, परिधान=वेश, युगल=दो, मेखला=तगड़ी, कमर पर बांधा जाने वाला आभूषण, पट=वस्त्र, रत्नाकर=समुद्र, मण्डन=गहने, बन्दीजन=चारण, भाट, वृन्द=समूह, अभिषेक=राजतिलक, पयोद=बादल, सर्वेश=सबका स्वामी, परमात्मा, निर्मल=साफ, नीर=जल, पवन=हवा, श्रम=थकावट, षड ऋतुओं=छः ऋतुओं, दृश्ययुक्त=दृश्यों के साथ, शुचि=पवित्र, सुधा=अमृत, तरणि=सूर्य, तम=अन्धकार, सुमन=फूल, कीर्ति=यश, प्रेरा=प्रेरित किया हुआ ।

माखनलाल चतुर्वेदी

उलाहना : टीस=रह-रहकर उठने वाली पीड़ा, कसक, अभिसार=प्रिय से मिलने के लिए जाना, इबारत=रचना, अमानत=धरोहर, थाती, आन=मर्यादा, गाफिल=असावधान, बेखबर,

उद्दण्ड=शरारती ।

दूबों के दरबार में : तरुओं=वृक्षों, विजन=सुनसान, निर्जन; मयूरी=मोरनी, मुक्ता=मोती ।

उन्मूलित वृक्ष : तरुवर=वृक्ष, वनचर=वनों में रहने वाले जानवर ।

जयशंकर प्रसाद

आत्मकहानी : अनन्त नीलिमा=असीम आकाश, गागर=घड़ा (मनरूपी), रीती=खाली, विडम्बना=छलना, प्रवंचना=धूर्तता, अरुण=लाल, कपोलों=गालों, स्मृति=याद, पाथेय=संबल (पथिक द्वारा मार्ग के लिए ले जाया जाने वाला भोजन); पथिक=यात्री, पन्था=मार्ग, सीवन=सिलाई, कन्था=गुदड़ी, सरलते='सरलता' का मानवीकरण करके उसके लिए सम्बोधन ।

गीत लहरी : वसुधा=पृथ्वी, क्षोभ=क्रोध, रजनी=रात्रि, कलरव=पक्षियों का चहचहाना, वात=हवा ।

हमारा देश : अरुण=सूर्य की अरुणिम आभा से प्रकाशित, तामरस गर्भ विभा=कमल के अन्तर्गत पराग की दीप्ति, सुरधनु=इन्द्र धनुष, मलय समीर=मलय पर्वत की शीतल वायु, हेम कुंभ=स्वर्ण कलश, खग=पक्षी, नीड़=घोंसला ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

ठूँठ : ठूँठ=शाखाओं विहीन, सूखा वृक्ष, सबल=बल युक्त, पल्लवित=अंकुरित, काम=कामदेव, छाँह=छाया, पथिक=यात्री, प्रणियों=प्रेमियों, नयन-नीर=अश्रु जल, आँसू , विहग=पक्षी ।

सन्ध्या सुन्दरी : दिवसावसान=दिन का अन्त, तिमिरांचल=अन्धेरे का दुपट्टा, विलास=खुशी, अभिषेक=राजतिलक, अलसता=आलस्य, नीरवता=चुप्पी, अम्बर-पथ=आकाश मार्ग, अनुराग=

प्रेम, आलाप=बातचीत, नुपूर=घुंघरू, अव्यक्त=अस्पष्ट, व्योम=आकाश, वक्षःस्थल=छाती, उत्ताल=ऊंची, तरंगाघात=लहरों की चोट, अनिल=वायु, अनल=आग, अंक=गोद, विस्मृति=भूल, निश्चलता=शान्ति, लीन=खोया हुआ, विरहकुल=विरह में दुःखी, कमनीय=सुन्दर, विहाग=प्रभात का राग।

विधवा : इष्टदेव=आराध्यदेव क्रुर-काल-तांडव=मृत्यु का भीषण नृत्य, तरु=वृक्ष, षड्ऋतु=छः ऋतुएं (ग्रीष्म, पावस, शरत्, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त), कुसुमित=पुष्पित, कानन=वन, उपवन, जीवन-धन=पति, अनन्त-पथ=आकाश, पुलिन=तट, त्रस्तचितवन=आतंकित दृष्टि, अस्फुट=अस्पष्ट।

भिक्षुक : टूक=टुकड़े, लकुटिया=लाठी, टेक=टिकाकर।

सुमित्रानन्दन पन्त

वसन्त : मग=मार्ग, सौरभ=सुगन्ध, पल्लव=कोमल पत्ते, दिगन्त=दिशाओं का अन्त, निखिल=समस्त, पावक=आग।

तप : अकलुष=पाप-रहित, आतुर=बैचेन।

अवगाहन : विभा=चमक, आवाहन=बुलाना, शलभ=पतंगा।

उद्बोधन : खंडित=भग्न, अंतःस्मित=आन्तरिक प्रसन्नता, पाश=बन्धन, रुद्धद्वार=रुका हुआ मार्ग, केतु=पताका, अतल=असीम।

भू-स्वर्ग : आभा=चमक, दीप्ति, नीरव=शान्त, वातायन=झरोखा, रोशनदान, रव=ध्वनि, मिथ=बहाने से, तिमिर=अन्धकार, उर्वर=उपजाऊ।

स्वाधीनता चेतना : आलोक=प्रकाश, उन्मद=मतवाला; इंगित=संकेत, अवसाद=दुःख, भीति=दीवार, मिथ्या=झूठ, कालदंश=काल का ग्रास, विवर्तन=चक्र।

गीत : विहंगम=पक्षी, अनाहूत=अनिमन्त्रित, बिन बुलाया, अविज्ञात=संदिग्ध, अस्पष्ट, अनजाना, परिमल=पराग, पंकिल=

कीचड़ में सना हुआ ।

महादेवी वर्मा

परिचय : स्पन्दन=गति, निष्पन्द=शान्त, गतिहीन; क्रन्दन=हाहाकार, आहत=घायल, दुकूल=दुपट्टा, क्षितिज=जहां पृथ्वी आकाश मिलते नजर आते हैं, आगम=आगमन ।

स्मृति : रंजित=रंगा हुआ, शिथिल=कमजोर, रजनी=रात्रि, यूथी=जुही का फूल; अलसित=अलसाए, तारक लोचन=तारे रूपी नेत्र, रसालों=आमों ।

सुभद्राकुमारी चौहान

बचपन : अतुलित=असीमित, द्रुत=तेज, वीरों का वसन्त, मारू=युद्ध में बजाया जाने वाला बाजा ।

झांसी की रानी : फिरंगी=अंग्रेज, सुभट=अच्छे योद्धा, विरुदावली=यशोगान, रनिवास=राजमहल का वह स्थान जहां रानियां रहती हैं, बिकानी=बिकी, वेदना=दुःख, आहत=घायल, पुरखों=पूर्वजों, अन्तरतम=मन के भीतर, जुर्म=अपराध, द्वन्द्व=युद्ध, दिव्य=स्वर्गीय, स्मारक=यादगार ।

दिनकर

स्वाधीन भारत की सेना : आलोक=प्रकाश, नवल=नया, हिमाद्रि=हिमालय, धरणी=धरती, पृथ्वी; वीर-प्रसू=वीर-प्रसूता, वीरों को जन्म देने वाली माँ, अनल=आग, हलाहल=समुद्र मन्थन के समय प्राप्त होने वाला विष, संजीवन=जीवनदान करने वाला, अरिदल=शत्रु दल, रण=युद्ध, जमीं=जमीन, धरा, हठ=जिद, सरहद=सीमा, चौकसी=निगरानी ।

चान्द और कवि : अनोखा=अजीब, रागिनी=विशिष्ट लय युक्त ध्वनि, (यहां कवि के 'अन्तर्मन की ध्वनि' अभिप्रेत है।)

हिमालय के प्रति : नगपति=पर्वतों का स्वामी, साकार=जीता-जागता, विराट=महान्, पौरुष=साहस, पुरुषार्थ, पुंजीभूत=एकत्रित, हिम-किरीट=बर्फ का मुकुट या ताज, भाल=मस्तक, अजेय=न जीता जा सकने वाला, निर्बन्ध=बन्धन रहित, मुक्त=स्वतन्त्र, गर्वोन्नत=अभिमान से ऊँचे उठे हुए, निसीम=विस्तृत, अनन्त, सीमा रहित, व्योम=आकाश, वितान=तम्बू, चिर=निरन्तर, यतिवर=श्रेष्ठ योगी, जटिल=कठिन, निदान=उपाय, अखण्ड=अटूट, चिर=स्थायी, विषम=भयंकर, दृगोन्मेष=आंखें खोलना, दग्ध=जले हुए, पंचनद=पंजाब, अमिय=अमृत, विगलित=गली हुई, क्रान्ता=आक्रमणकारी, पददलित=पैरों से कुचला हुआ, तपी=तपस्वी, कराल=भयंकर, सुत=पुत्र, चतुर्दिक=चारों ओर, व्याल=सांप, वैभव=धन-सम्पत्ति, अशेष=सारा।

बच्चन

मधुशाला : भावुकता=भावुक होने का भाव, हाला=शराब, मद, साकी=शराब पिलाने वाली, मद=नशा, मोमिन=सच्चा मुसलमान, सिन्धु=समुद्र, सागर, उधेड़बुन=सोच-विचार, चिन्ता, हसरतें=इच्छाएँ।

जो बीत गई : अम्बर=आकाश, शोक=दु:ख, वल्लरियां=लताएं मंजरियां।

आरसीप्रसाद सिंह

जागरण-शंख : तरुणाई=युवावस्था, शिखर=चोटी, हुंकार=ललकार, गर्जना, विमुक्त=स्वतन्त्र, करवाल=तलवार, ताण्डव=शिव का प्रलंयकारी नृत्य, वनराज=सिंह।

कवि-परिचय

कबीर

कबीर हिन्दी की निर्गुणधारा के सन्त कवि हैं। इनका जन्म सं० १४५६ में हुआ और सं० १५७५ में वे दिवंगत हुए। इनके विषय में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि वे एक विधवा ब्राह्मण कन्या की कोख से पैदा हुए थे। लोक-लाज के भय से माँ ने नवजात शिशु को लहरतारा नामक एक तालाब के किनारे फेंक दिया। नीरू और नीमा नाम के एक जुलाहा दम्पति उसे उठाकर घर लाए और उसका पालन-पोषण किया। यही शिशु आगे चलकर कबीरदास के नाम से जाना जाने लगा।

कहा जाता है कि कबीर ने कई दर्जन पुस्तकों की रचना की। किन्तु वस्तुतः उनमें से कई एक कबीर-रचित नहीं हैं। कबीर सम्प्रदाय के ही अन्य कवियों की रचित पुस्तकें उनके नाम से चल पड़ीं। कबीर-सम्प्रदाय में सर्वाधिक मान्य पुस्तक 'बीजक' है। यह कबीर की वाणी का संग्रह है। इसके तीन भाग हैं—रमैनी, साखी, सबद। रमैनियाँ चौपाई में लिखी गई हैं। सात-सात चौपाइयों के बाद एक-एक साखी है। साखी दोहों में लिखी गई है। कबीर-काव्य के सबसे प्रामाणिक अंश साखी (साक्षी) को माना जाता है। सबद गेय पद होते हैं और बौद्ध तथा नाथ-सिद्धों की परम्परा में लिखे गए हैं।

कबीर ने अपने सिद्धान्त के लिए विभिन्न भारतीय ज्ञानमार्गों से विचार संकलित किए हैं। वे रामानन्द के शिष्य थे। उनसे कबीर ने एकान्तिक प्रेमपुष्ट वेदान्त ग्रहण किया। शेख तकी से कबीर ने सूफी मत का ज्ञान प्राप्त किया। उनकी प्रणय-भावना पर सूफियों का प्रभाव

लक्षित होता है। वैष्णव-सम्प्रदाय से उन्होंने अहिंसा का तत्त्व लिया। साधना के क्षेत्र में नाथपंथी हठयोगियों से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। कबीर अद्वैत सिद्धान्त में विशेष आस्था रखते थे। इस सिद्धान्त के अनुसार एक ब्रह्म ही सत्य है और यह संसार माया का प्रपंच-मात्र है। वह जीव की भ्रान्ति के कारण ही सत्य प्रतीत होता है, वस्तुतः वह मिथ्या है। ब्रह्म में लीन हो जाना ही मुक्ति है। अवतार मूर्तिपूजा, वेदशास्त्र आदि की बातें व्यर्थ हैं। राम घट-घट में समाया हुआ है। सच्चे प्रेम से वह मिलता है। तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि सब ढोंग हैं।

कबीर सन्त और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों के बाह्याचारों की खुलकर निन्दा की है। सभी प्राणियों पर दया करना, अहिंसा, अविरोध, सहनशीलता आदि मानव-धर्मों का कबीर ने प्रचार किया।

सूरदास

सूरदास के जीवन तथ्य विवादास्पद हैं। इनका जन्म संवत् १५३५ के लगभग और मृत्यु सं० १६४० के लगभग मानना अधिक समीचीन ज्ञात होता है। जाति के ये ब्राह्मण या ब्रह्मभाट थे। ये जन्म से अन्धे थे या बाद में अन्धे हुए—यह भी विवादग्रस्त विषय है। आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। यहीं वल्लभाचार्य से इनका सम्पर्क हुआ। वल्लभाचार्य के आदेश से ही सूरदास ने भागवत में वर्णित भगवान की लीला का गान किया है।

'सूरसागर' सूर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इनकी अन्य कृतियाँ 'साहित्य-लहरी', 'सूर सारावली' आदि हैं। केवल 'सूरसागर' के आधार पर ही हिन्दी-साहित्य में सूर का स्थान अन्यतम माना जा सकता है।

सूर रतिभाव के कवि हैं। यह रति तीन रूपों में प्रकट हुई है—भगवद्विषयक, वात्सल्य और दाम्पत्य। उनका प्रमुख वर्ण्य-विषय कृष्ण-लीला है। सूर ने कृष्ण के जीवन का वर्णन नहीं किया। सांगोपांग

लोकव्यापी प्रभाव कर्मपक्ष वाले प्रसंग बहुत कम आए हैं। उनके काव्य में इस प्रकार जीवन की अनेक रूपता नहीं है, गम्भीर समस्याओं का चित्रण भी नहीं है। बालकृष्ण के पारिवारिक और सामाजिक जीवन के चित्र तो मिलते हैं, प्रेम पक्ष भी विशद है। परन्तु यह वर्णन घटनापूर्ण नहीं है।

सूर का ध्यान कृष्ण के सौन्दर्य-पक्ष पर ही अधिक था। कृष्ण के शील और शक्ति का निरूपण उनका लक्ष्य नहीं था। सूरदास के काव्य में दो ही रस मिलते हैं—शृंगार और वात्सल्य। भक्तिरस को भी इन के साथ युक्त किया जा सकता है। वात्सल्य और शृंगार का कोई भी कोना सूर द्वारा अछूता नहीं रह गया है। जन्म, गोद, पालना, लोरी, बालक्रीड़ा, गोचारण, वियोग आदि से सम्बन्ध रखने वाली विविध अन्त-र्दशाओं और कमनीय चित्रों का मार्मिक चित्रण हुआ है। वात्सल्य रस के वर्णन में सूर अद्वितीय हैं।

शृंगार का निरूपण भी चरम सीमा पर पहुंचा हुआ है। संयोग और वियोग की सभी दशाओं का चित्रण किया गया है। आलंबन, उद्दीपन और आश्रय की सभी स्थितियाँ अंकित की गई हैं। वियोग की प्रधानता मिलती है। घटनाओं की कमी को अप्रस्तुत विधानों द्वारा पूरा किया गया है। सूरसागर का सबसे अधिक मार्मिक और रमणीय अंश 'भ्रमरगीत' है। यह एक अद्वितीय उपालम्भ-काव्य है। गोपियों का प्रेम स्वछन्द वातावरण में पल्लवित हुआ था; किन्तु परिस्थिति ने उन्हें विवश कर दिया। कुछ ही मील दूर मथुरा में स्थित कृष्ण से वे मिल नहीं सकती थीं। जीवन की इस मार्मिक स्थिति की व्यंजना सूर ने अतीव सफलता से की है।

सूर पुष्टिमार्ग के भक्त कवि हैं। 'पुष्टि' से अभिप्राय है कि भगवान का अनुग्रह ही जीव का कल्याण करने में समर्थ है। इसलिए उन्होंने निर्गुण का खण्डन किया है और सगुण की स्थापना पर बल दिया है। सूर की कविता में पाँच प्रकार के भक्ति रसों में से सख्य और मधुर रस का ही विशेष परिपाक हुआ है।

भावों की मार्मिकता के साथ-साथ सूर की कला भी श्रेष्ठ है।

विषय के अनुसार ही उन्होंने गीतों में काव्य-रचना की। उनकी साहित्यिक ब्रजभाषा में चलती बोली का भी मिश्रण है। पंजाबी, पूरबी आदि के शब्द अपवादरूप हैं। सूर की भाषा की एक बड़ी विशेषता उस की लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता है। सूर की वक्रोक्तियाँ अनूठी हैं। उपमामूलक अलंकारों, विशेषकर उत्प्रेक्षा और रूपक का उनके काव्य में सुन्दर प्रयोग हुआ है। मुरली-माधुरी से सम्बन्धित उनकी काव्यमयी उक्तियाँ बड़ी ही सरस हैं। सूर के गीतों की संगीतात्मकता अप्रतिम है।

तुलसीदास

तुलसीदास विश्व के महान् कवियों में से एक हैं। उनकी जीवनी का अध्ययन अभी तक विवाद का ही विषय बना हुआ है। अधिक युक्तियुक्त प्रमाणों के आधार पर यह माना जाता है कि तुलसीदास का जन्म सं० १५८९ और निधन सं० १६८० में हुआ था। इनका बचपन अनाथ दशा में बीता था। ये सोरों (जिला एटा) के रहने वाले थे। युवावस्था में ये कथावाचक व्यास का जीवन व्यतीत करते थे। पत्नी के वे अतिशय अनुरागी थे। एक बार इनकी पत्नी मायके गई हुई थीं। कई दिनों तक बाहर से कथा बाँचकर लौटने पर पत्नी-वियोग इन्हें इतना खला कि गंगा पार करके ससुराल पहुंच गए। वहां पत्नी के भर्त्सनापूर्ण उपदेश ने इन्हें संसार से विरक्त कर दिया।

इन्होंने अयोध्या, काशी और चित्रकूट आदि स्थानों में अनेक बार भ्रमण किया। कुछ काल तक ये राजापुर (जिला बाँदा) में भी रहे। इसी कारण राजापुर को ही अनेक विद्वान् तुलसीदास की जन्मभूमि मानते हैं। अयोध्या में सं० १६३१ में इन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना आरम्भ की थी। अन्त में काशी को इन्होंने अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया। गंगा तट पर आज भी तुलसीघाट विद्यमान है।

तुलसी नाम पर दर्जनों कृतियाँ प्रचलित हैं। किन्तु केवल बारह ही प्रामाणिक मानी जाती हैं। उनमें से पाँच मुख्य हैं—रामचरितमानस,

विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली और दोहावली। 'श्रीकृष्ण गीतावली' के पद कृष्ण-विषयक हैं। 'पार्वती-मंगल' में शिव-पार्वती-विवाह का वर्णन है। 'वैराग्य-संदीपनी' में संत और शांति का निरूपण है। शेष सभी कृतियाँ राम से सम्बन्धित हैं।

प्राकृत जनों—लौकिक महापुरुषों का गुणगान करना, तुलसी की दृष्टि में, सरस्वती का अपमान है। अतएव उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को प्रतिपाद्य विषय बनाया है। तुलसी ने भारतीय वाङ्मय का गंभीर अध्ययन किया था। इसलिए उनकी कविता में समस्त भारतीय संस्कृति, सम्पूर्ण सनातन धर्म का विशद चित्रण हुआ है। उसमें निगम, आगम और पुराण का; कर्म, ज्ञान और भक्ति का; सभी आस्तिक दर्शनों का; भक्ति-प्रधान द्वैत और ज्ञान प्रधान अद्वैत का; निर्गुण और सगुण का; स्वार्थ और परमार्थ का; सिद्धान्त और व्यवहार का सुन्दर समन्वय हुआ है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म से लेकर मायालिप्त जीव की विषयासक्ति तक के विभिन्न तत्त्वों का वर्णन किया है।

तुलसी के काव्य में जीवन की सभी दशाओं के चित्र मिलते हैं। उस में जीवन के बाह्य रूपों और अन्तर्वृत्तियों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि तुलसी मुख्य रूप से शान्त या भक्तिरस के कवि हैं, तथापि उनकी रचनाओं में अन्य सभी रसों एवं भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है। नारद-मोह में हास्य, राम-सीता का मर्यादित शृंगार, भरत की ग्लानि लंका-दहन का भयानक दृश्य, युद्धभूमि के बीभत्स चित्र आदि उल्लेखनीय हैं। रसोचित वस्तु के संग्रह और त्याग में, पात्रों के चरित्र-चित्रण में और सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सर्वत्र ही तुलसी ने अपनी प्रतिभा और निपुणता का प्रभावोत्पादक परिचय दिया है।

तुलसी ने प्रबन्ध काव्य भी लिखे और मुक्तक भी। 'रामचरितमानस' एक निराला महाकाव्य है। 'जानकी-मंगल' आदि खंडकाव्य हैं। मुक्तकों में 'विनय-पत्रिका', 'दोहावली' आदि शुद्ध मुक्तक हैं; और 'बरवै रामायण' प्रबंध-मुक्तक। छंद की दृष्टि से तुलसी ने अपने युग में प्रचलित सभी प्रधान पद्धतियों का प्रयोग किया—दोहा, चौपाई, बरवै कवित्त, सवैया और छप्पय। सभी पर उनका समान अधिकार है।

परन्तु चौपाइयों की रचना में जो सफलता तुलसी को मिली है, वह आज तक किसी को नहीं मिली।

तुलसीदास ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों ही भाषाओं में काव्य रचना की है। 'रामचरितमानस' की रचना अवधी में हुई है, 'कवितावली' आदि ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। श्लोकों की रचना के अतिरिक्त अवधी और ब्रज में भी संस्कृत वाक्य और वाक्यांशों का उन्होंने स्वच्छदतापूर्वक व्यवहार किया है। उन्होंने संस्कृत को सुविधा नुसार नये रूप में ढाला है। अरबी, फारसी, पूरबी आदि के शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा विषय और पात्र के अनुकूल है। उनकी शैली विविध अलंकारों से मंडित है। प्रायः सभी काव्यमय या सिद्धांतपूर्ण उक्तियाँ अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा या रूपक से अलंकृत हैं।

रहीम

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म सं० १६१३ वि० में लाहौर में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरमखाँ खानखाना था। बैरमखाँ अकबर के अभिभावक थे। अकबर जब बड़ा हुआ तो उसे राज-काज के काम में बैरमखाँ का दखल अच्छा न लगा। इसलिए उसने बैरम को हज करने जाने के लिए विवश कर दिया। मार्ग में एक अफगानी दुश्मन ने बैरम को मार डाला। खबर पाकर अकबर ने बैरम के पुत्र रहीम को अपने पास बुलवा लिया। उस समय रहीम की अवस्था चार साल की थी। अकबर के पक्ष से रहीम ने कई लड़ाइयाँ लड़ीं और विजय प्राप्त की। उन्हें सूबेदारी और प्रतिष्ठा सभी कुछ मिला। वे बड़े दानी प्रकृति के व्यक्ति थे। इनका बाद का जीवन बड़ा कष्टमय बीता। धन-पुत्र सभी इनके देखते-देखते मिट गए। इसकी कड़वाहट इनके दोहों में मिलती है।

रहीम बड़े सेनापति, राजकाज में दक्ष, अकबरी दरबार के नामी रत्न होने के साथ-साथ एक प्रसिद्ध विद्वान भी थे। अनेक झंझटों में

जीवन व्यतीत करते हुए भी उनका विद्याप्रेम अटूट बना रहा। रहीम ने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इन सभी भाषाओं में काव्य-रचना करने में वे समर्थ थे। वे कवियों के आश्रयदाता भी थे। दोहावली में रहीम द्वारा रचित हिन्दी के दोहे संग्रहीत हैं। रहीम ने अनेक स्फुट दोहों की रचना की है जो 'रहीम-रत्नावली' या 'दोहावली' के नाम से ज्ञात हैं। रहीम के प्राप्त दोहों में श्रृंगार के दोहे बहुत कम हैं। नीति और शिक्षा के दोहों की प्रधानता पाई जाती है। इन दोहों से उनके गंभीर अनुभव का प्रमाण मिलता है रहीम के दूसरे दोहासंग्रह हैं 'नगरशोभा', 'बरवे नायिका भेद', 'बरवे', 'मदनाष्टक'।

रहीम के दोहों की भाषा चलती-फिरती भाषा है। उनके नीति और उपदेश के दोहे लोकोक्तियों के रूप में लोगों को याद रहते हैं। उनमें सांसारिक अनुभव भरा हुआ होता है। लोग उनके दोहों को अनेक अवसरों पर दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। रहीम के दोहों में भारतीय जाति और धर्म के प्रति सम्मान-भाव व्यक्त हुआ है।

रसखान

दिल्ली के एक पठान सरदार के वंश में रसखान का जन्म सम्वत् १६१५ वि० के आसपास हुआ था। शिवसिंह सेंगर के अनुसार उनका वास्तविक नाम सैयद इब्राहीम था किन्तु वे काव्य के क्षेत्र में 'रसखान' नाम से विख्यात हुए। ऐसा कहा जाता है कि हुमायूं को शरण देने के कारण काजी सैयद ग़फूर को हरदोई जिले में ५००० बीघा जमीन पुरस्कार स्वरूप दी गई थी। सम्भवतः इन्हीं के परिवार से रसखान का सम्बन्ध था। ये वृन्दावन क्यों रहने लगे थे, इसके कारणों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

'रसखान' एक रसिक जीव थे। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के आधार पर आपका प्रेम किसी वणिक-पुत्र से था। कोई इसे कपोल-

कल्पित मानते हैं और कोई किसी स्त्री विशेष से इनका प्रेम-सम्बन्ध बतलाते हैं। कुछ भी हो, उन्होंने प्रेम-देव के लिए 'मानिनी' और 'मोहिनी' दोनों को ही छोड़ा था—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रेम देव को छविहि लखि, हुए मियाँ रसखान॥

ये श्री विट्ठलनाथ जी के प्रमुख शिष्यों में से थे और भगवान कृष्ण की भक्ति जीवनपर्यन्त करते रहे। उनकी मृत्यु सं० १६८० वि० में हुई। इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

(१) सुजान-रसखान। (२) प्रेम वाटिका।

संक्षेप में आपके काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:—

१—आपकी कविता में ब्रज-भूमि के नदी-नाले, पर्वत-सरोवर, पशु-पक्षी, गोपी-ग्वाल, सभी के प्रति अनुराग मिलता है।

२—उनकी कविता सरसता एवं स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। उसमें ब्रजभाषा का प्रयोग है। भाषा का परिष्कृत रूप जितना इनके काव्य में मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

३—आपको अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से अधिक प्रेम है। मुहावरे भी यत्र-तत्र उनके काव्य में बिखरे पड़े हैं।

४—इनकी भक्ति में सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों की तरह सख्य-भाव मिलता है। इसीलिए उपालम्भों में स्वतंत्रता और अक्खड़पन है।

५—इन्होंने एकांगी और निःस्वार्थ प्रेम को ही अपने प्रेम का आदर्श माना है। इन्होंने गेय पद न लिखकर कवित्त और सवैये लिखे हैं जिन्हें लोग 'रसखानि' नाम से पुकारने लगे हैं। भारतेन्दु ने इनके विषय में लिखा था—

"इन मुसलमान हरिजनन पैं,
कोटिन हिन्दू वारिए।"

बिहारी

बिहारी का जन्म सं० १६५२ में ग्वालियर में हुआ था। वे माथुर चौबे थे। उनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड और युवावस्था मथुरा में बीती। वे जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे। वहीं पर उन्हें विशेष ख्याति मिली। उन्होंने लगभग सात सौ दोहे लिखे हैं जो उनकी एकमात्र कृति 'बिहारी-सतसई' में संगृहीत हैं। उनका परलोकवास सं० १७२० के आसपास हुआ।

'बिहारी-सतसई' उनकी अत्यधिक लोकप्रिय रचना है। उसकी लोकप्रियता का एक प्रबल प्रमाण उसपर लिखी गई अनेक टीकाएँ हैं। उनकी सतसई के अनेक अनुवाद भी हुए हैं। बिहारी ने अपनी सतसई की रचना रीति-काव्य की दृष्टि से की है। प्रायः प्रत्येक शृंगारिक दोहा किसी न किसी नायिका के लक्षण का उदाहरण है। 'सतसई' में अधिकतर शृंगार के ही दोहे हैं। एकाध दोहों का विषय भक्ति या नीति है। उनकी 'सतसई' पर हाल की 'गाथासप्तशती' और गोवर्धन की 'आर्या-सप्तशती' का प्रभाव लक्षित होता है।

दोहे जैसे छोटे छन्द में बिहारी ने जितना अर्थगौरव, प्रसंग-कल्पना और अलंकार-वैभव भर दिया है, वह उनकी असाधारण प्रतिभा का सूचक है। उनकी 'सतसई' में शृंगार के सभी अंगों का उपस्थान है। उसमें रूप-चित्रण और अनुभव-विधान, संयोग और वियोग, स्थायी और व्यभिचारी भावों की अभिराम व्यंजना हुई है। उनके अप्रस्तुत-विधान और अलंकार-योजना की कमनीयता द्रष्टव्य है। एक-एक दोहे में कई-कई अलंकार गुँथे पड़े हैं, किन्तु काव्य-सौन्दर्य धूमिल नहीं हुआ है। अलंकार या अतिशयोक्ति के मोहवश अथवा फारसी प्रभाव के कारण भद्दे कहे जाने वाले दोहे नगण्य ही हैं।

बिहारी को ज्योतिष, वेदान्त, वैद्यक आदि विषयों की भी जानकारी थी। परन्तु उन्हें उन विषयों का पंडित कहना उचित नहीं है। उनका निरीक्षण बड़ा ही सूक्ष्म और व्यापक था। इसीलिए वे सौंदर्य का इतना मार्मिक चित्रांकन करने में समर्थ हुए। उनका वाग्वैदग्ध्य और

उक्तिवैचित्र्य मनोरम है। अन्तर्वृत्ति-निरूपण में बिहारी को उतनी सफलता नहीं मिली जितनी बाह्य चित्रण में। यही कारण है कि रूप-रचना के सौंदर्य-प्रेमी बिहारी की कविता पर मुग्ध होते हैं, किन्तु अन्तस्तल पर स्थायी मार्मिक प्रभाव चाहने वाले, आभ्यन्तर प्रवाह के खोजी असंतुष्ट रहते हैं।

बिहारी की भाषा ब्रजभाषा है। उसमें फारसी, बुन्देलखंडी आदि के शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं। शब्दों की तोड़-मरोड़ प्रायः नहीं हुई है। वाक्यरचना व्यवस्थित है। मतिराम आदि परवर्ती कवियों ने बिहारी के अनुकरण पर रचनाएँ कीं—यह भी इनकी गरिमा और लोकप्रियता का ज्ञापक है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

युगस्रष्टा साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म वाराणसी के एक सम्पन्न परिवार में, सन् १८५० ई० में हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। कवित्व-शक्ति भारतेन्दु को उत्तराधिकार में मिली थी। यद्यपि पैंतीस वर्ष की स्वल्प आयु में ही, १८८५ ई० में इनका देहान्त हो गया तथापि इस स्वल्पकाल में ही इन्होंने अनेक संस्थाओं की स्थापना की और स्वयं संचालन भी करते रहे। अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन, समाज-सुधार के अनेक प्रयत्न, शिक्षा के प्रसार के अनेक कार्य और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ गद्य और पद्य में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना करके हिन्दी साहित्य में एक नए युग का शुभारंभ किया। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस युग को भारतेन्दु युग के नाम से स्मरण किया जाता है।

भारतेन्दु की साहित्यिक प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आपने साहित्य के अनेक अंगों—कविता, निबन्ध, नाटक में रचना-सृष्टि की है। अपनी कविता में इन्होंने भक्ति तथा शृंगार की मार्मिक कविताएँ तो लिखीं ही, देश-प्रेम, स्वभाषा-प्रेम तथा समाज-सुधार के स्वर भी मुखरित किए। निबन्ध के क्षेत्र में आपने इतिहास, यात्रा, जीवन-चरित

राजनीति, समाज-सुधार, पर्व-त्यौहार तथा जीवन और जगत के सम्बन्धे में अनेक निबन्ध लिखे हैं।

आपने अनेक नाटकों की रचना की। इन नाटकों में इतिहास, समाज-सुधार, हास्य-व्यंग्य, देशप्रेम आदि का समावेश है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की समस्त रचनाएं 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' नाम से तीन खण्डों में, नागरि प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित की हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की साहित्य-सृष्टि का समय प्राचीन और नवीन का संधि काल था। यही कारण है कि आप के कृतित्व में प्राचीन और नवीन का सुन्दर सम्मिलन हुआ है। भाषा के क्षेत्र में भी यही बात दृष्टिगोचर होती है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में काव्य-रचना की है।

भारतेन्दु के विचारों में नवीनयुग का सन्देश है। उनके मन में विदेशी दासता के प्रति गहरा क्षोभ था, जो उनकी रचनाओं में कई जगह प्रकट हुआ है। उन्हें स्वदेश, स्वजाति और स्वभाषा पर बड़ा गर्व था।

हरिश्चन्द्र के समग्र लोकमंगल कारक व्यक्तित्व से मुग्ध होकर जन-गण ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया।

भारतेन्दु की रचनाओं में विषयगत वैविध्य के साथ-साथ शैलीगत और भाषागत वैविध्य भी दृष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा में ब्रज, खड़ी बोली और उर्दू—तीनों के शब्द मिलते हैं।

हरिऔध

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के एक प्रमुख कवि हैं। इनका जन्म सं० १९२२ में जिला आजमगढ़ में स्थित गाँव निजामाबाद में हुआ था। उनके पूर्वज नानक-पंथ में दीक्षित हो गए थे। अपने प्रारम्भिक जीवन-काल में उन्हें पर्याप्त आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था। मिडिल और नार्मल की परीक्षा पास करके उन्होंने एक तहसीली स्कूल में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। कुछ दिनों तक अध्यापन-कार्य करने के बाद वे कानूनगो बने। किन्तु, इस काल में भी वे साहित्या-

नुशीलन और सृजन में संलग्न रहे। उनकी साहित्यिक ख्याति इतनी बढ़ी कि सन् १९२३ में, कानूनगो के पद से अवकाश ग्रहण करने पर, काशी विश्वविद्यालय में अध्यापक बना दिए गए। इस पद पर वे सन् १९४१ तक प्रतिष्ठित रहे। सं० २००२ (सन् १९४५) में आप दिवंगत हुए।

हरिऔध जी पहले ब्रजभाषा में कवित्त और सवैये लिखते थे; पर बाद में खड़ी बोली में काव्य-रचना करने की ओर प्रवृत्त हुए। इनके द्वारा रचित 'प्रियप्रवास' को खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य कहा जाता है। इसकी रचना भिन्न-तुकान्त छन्दों में की गयी है। इस महाकाव्य का आधारभूत इतिवृत्त कृष्णचरित है। इसमें कवि ने राधा और कृष्ण के चरित्र की मौलिक कल्पना की है। सूरदास तथा अन्य कृष्ण-काव्य के रचयिताओं की कृष्ण-विषयक कल्पना से 'प्रियप्रवास' की कृष्ण विषयक कल्पना सर्वथा भिन्न है। 'प्रियप्रवास' ने कृष्ण को ब्रज के रक्षक रूप में ही अधिक चित्रित किया गया है। यहाँ उनका लोक-रंजक रूप गौण में ही प्रकट हुआ है। राधा का व्यक्तित्व भी लोकहित की भावना से युक्त है। ग्रंथ की भाषा तत्सम शब्दप्रधान है।

प्रमुख रचनाएं :—'प्रिय-प्रवास', 'वैदेही बनवास', 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', 'रसकलस', 'पद्यप्रसून', 'कर्मवीर', 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' इत्यादि 'हरिऔध' जी की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

काव्यगत विशेषताएं :

'हरिऔध' जी की कविताओं में आचरण और नैतिकता के उत्कर्ष का व्यापक परिचय मिलता है। उनमें उपदेशात्मकता का स्वर अत्यधिक उभकर हमारे सामने आता है। इसके कारण कहीं-कहीं काव्यगत सौन्दर्य की हानि भी हुई है। समग्रतः उनकी कविताओं में लोक-संग्रह का भाव प्रबल रूप में प्राप्त होता है। भावानुभावादि के चित्रण में पर्याप्त मार्मिकता एवं कवित्व लक्षित होता है। इनका संस्कृत पद-विन्यास बहुत ही चुना हुआ और काव्योपयुक्त होता है।

: १२३ :

मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सं० १६४३ में, जिला झाँसी स्थित चिरगाँव में हुआ था। उनके पूर्वज वैष्णव धर्मावलम्बी व्यक्ति थे। उनके पिता सेठ रामचरण जी परम भक्त एवं कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व-निर्माण में उनके पिता का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप गुप्त जी में आस्थावादी एवं आशावादी विचारों का पल्लवन एवं पोषण हुआ। ये ही भाव एवं विचार उनकी कविताओं के भी मूलस्वर हैं। गुप्त जी की शिक्षा-दीक्षा विद्यालय की अपेक्षा घर पर ही अधिक हुई। उन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, बँगला, मराठी, अंग्रेजी आदि का भी अध्ययन किया।

गुप्त जी की कवित्व-शक्ति जन्मजात थी। प्रतिभा के साथ अभ्यास का अनवरत क्रम जारी रखने के कारण उनके काव्य में उत्तरोत्तर उत्कृष्टता आती गई। 'रंग में भंग', 'जयद्रथवध', 'भारतभारती', 'वैतालिक', 'तिलोत्तमा' आदि गुप्त जी की कवित्व-साधना के प्रथम चरण की रचनाएँ हैं। इन सभी कृतियों का आधार अधिकतर ऐतिहासिक है। ये सभी कविताएँ वस्तुपरक ही अधिक हैं; अनुभूति का वेग इनमें कम है। किन्तु ये कृतियाँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से भरी हुई हैं। 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा' आदि परवर्ती काव्यकृतियों में गुप्त जी की काव्य-कला का उत्कृष्टतम रूप उपलब्ध होता है। इनमें कवि की अनुभूति प्रधान रूप से पायी जाती है। इनकी भाषा-शैली भी अधिक परिष्कृत है। उसमें लक्षणा-व्यंजना का पर्याप्त सौन्दर्य मिलता है।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से गुप्त जी की रचनाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक है। रामचरित को लेकर उन्होंने 'साकेत' और 'पंचवटी' की रचना की। 'द्वापर' उनकी कृष्ण-चरितमूलक रचना है। 'यशोधरा' एवं 'अनघ' बौद्ध-संस्कृति पर आधारित हैं। 'हिन्दू', 'विकट-भट', 'रंग में भंग', 'पत्रावली' में हिन्दू-संस्कृति की अभिव्यंजना हुई है। 'गुरुकुल' सिख संस्कृति-मूलक रचना है। 'जयद्रथ-वध', 'सैरन्ध्री', 'बक संहार' 'नहुष', में महाभारत के कथानक को उपजीव्य बनाया गया है। 'चन्द्राहास', 'शकुन्तला',

'तिलोत्तमा', 'शक्ति' पुराण की घटनाओं पर अवलम्बित हैं।

गुप्त जी की कविताओं में मुख्यरूप से अतीत भारत के सांस्कृतिक गौरव का गान किया गया है। उनमें संकुचित सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर समन्वयात्मक दृष्टि अपनायी गई है। वे हमारी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने में समर्थ हैं। उनमें प्रायः सभी वाद सुलभ हैं; यथा रूढ़िवाद, छायावाद, गांधीवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, हालावाद आदि। गुप्त जी की कविताओं में शैली की विविधता भी द्रष्टव्य है। वाह्यार्थ-चित्रण, अन्तर्वृत्ति-निरूपण, जनवादी भावाभिव्यक्ति, व्यक्तिवादिता, काल्पनिकता, प्रतीकात्मकता आदि शैली के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। प्रकृति का भी सर्वांगीण चित्रण उपलब्ध होता है। प्रकृति-चित्रण के संवेदनात्मक एवं आलम्बनात्मक दोनों रूप मिलते हैं।

रस की दृष्टि से भी उनकी कविता का क्षेत्र काफी विस्तृत है। शान्त रस, वीर रस, करुण रस एवं शृंगार रस के तो वे सिद्धहस्त कवि हैं ही, अन्य रसों का भी उनकी कृतियों में समावेश हुआ है। उनकी प्रबन्धमूलक रचनाएँ अधिकतर नायिकाप्रधान हैं, जिनमें उर्मिला, यशोधरा, तिलोत्तमा सदृश उपेक्षिता नारियों के त्याग और बलिदान का मार्मिक चित्रण किया गया है। उनके चित्रण में विप्रलम्भ शृंगार अथवा करुणरस की रसधारा प्रवाहित हुई है।

राष्ट्रकवि गुप्त जी की दृष्टि जीवन की प्रायः सभी दिशाओं की ओर गयी है। जीवन की अनेक मूलभूत समस्याएँ, उत्थान-पतन के बहुमुखी रूप उनकी कविताओं में लक्षित होते हैं। उनकी कविता में प्रसाद, माधुर्य और ओज सभी गुण देखने को मिलते हैं। अलंकार का भी सहज सौन्दर्य सुलभ है।

काव्य-विधाओं के प्रयोग की दृष्टि से भी उनकी कविताओं का क्षेत्र व्यापक है। उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, गीत आदि सभी काव्य-रूपों में रचना की है। 'साकेत' और 'जयभारत' उनके द्वारा विरचित महाकाव्य हैं; 'पंचवटी' एवं 'जयद्रथवध' खण्डकाव्य हैं; 'यशोधरा' में गद्य-पद्य दोनों शैलियों के सम्मिश्रण के कारण उसे चम्पू-काव्य माना जाता है; 'झंकार', 'कुणाल-गीत' और 'स्वदेश-संगीत' गीत-शैली में सृजित हैं।

खड़ी बोली को काव्य का उपयुक्त माध्यम बनाने में गुप्त जी का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। गुप्त जी ने खड़ी बोली की भाषा को परिष्कृत और परिमार्जित किया। उसे मुहावरेदार बनाया। आज खड़ी बोली में जो प्रांजलता, सुघरता और संकेतात्मकता आ गई है, उसे लाने में गुप्त जी का बहुत बड़ा योगदान है। आलोचक इस बात को मानते हैं कि ऐसी टकसाली, ऐसी शुद्ध और व्याकरणसम्मत भाषा किसी दूसरे कवि की नहीं है। उन्होंने सदा भाषा की सरलता, सुस्पष्टता और शुद्धता पर बल दिया।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म १८८८ ई० में, बाबई ग्राम, जिला होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। इन्होंने नार्मल परीक्षा पास करके मिडल स्कूल में अध्यापन कार्य से जीवन प्रारंभ किया। अध्ययन-शील स्वभाव होने के कारण आपने इन दिनों हिन्दी-साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ मराठी, गुजराती और अंग्रेजी भाषाएं भी सीख लीं। फिर अध्यापकी छोड़कर ये 'प्रभा' नामक पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे।

पत्रकारिता के क्षेत्र में होने के कारण आप उस समय के सुप्रसिद्ध पत्रकार और देशभक्त गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आए और उनकी प्रेरणा से राजनीति में भाग लेने लगे। आप स्वतन्त्रता आन्दोलन के सक्रिय सिपाही बनकर उसमें कूद पड़े।

यह बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण का समय था। देश में स्वतंत्रता आंदोलन जोरों से चल रहा था। आपने 'एक भारतीय आत्मा' के उपनाम से स्वतंत्रता के आन्दोलन को बल देने वाली ओजस्वी कविताओं की रचना भी की।

विदेशी सत्ता के विरोध के कारण चतुर्वेदीजी पर १९२१-२२ ई० में राजद्रोह का अभियोग चला और जेल में डाल दिया गया।

'प्रभा' के बाद आपने 'कर्मवीर' के सम्पादक का कार्य संभाला और

यह पत्र राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम का मुख पत्र बन गया। चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि "ये शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त तथा विचारों से क्रान्तिकारी हैं। परन्तु साहित्य के धरातल पर ये चारों घुलकर एकाकार हो जाते हैं।"

चतुर्वेदी जी ने मुक्तक काव्य की रचना की है और इनका काव्य मुख्यत: राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। चतुर्वेदीजी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए त्याग और बलिदान को आवश्यक मानते हैं और इसकी अभिव्यक्ति भी उनके काव्य में हुई है। इसके अतिरिक्त आपने प्रकृति के स्वच्छन्द चित्रों को भी अंकित किया। प्रेम की भी मार्मिक अभिव्यंजना आपके काव्य में हुई है। पर मुख्यत: आपकी गणना स्वतंत्रता आन्दोलन को वाणी देने वाले कवियों में होती है।

मुक्तक काव्य के अतिरिक्त आपने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक एक नाटक तथा 'कला का अनुवाद' नामक कहानी संग्रह और गद्य काव्य शैली में 'साहित्य देवता' की रचना की है। आपके निबन्धों के संग्रह 'समय के पाँव', 'चिन्तक की लाचारी' और 'अमीर इरादे, गरीब इरादे' में संग्रहीत हैं।

'हिमकिरीटनी', 'हिमतरंगिनी', 'माता', 'युगचारण', 'समर्पण', 'बीजुरी काजल आँज रही है' और 'मरणज्वार' उनके कविता संकलन हैं।

चतुर्वेदी जी को उनकी साहित्य साधना के उपलक्ष में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया है और सागर विश्वविद्यालय ने उन्हें सम्मानार्थ डी० लिट् की उपाधि दी।

१९६७ ई० में खण्डवा में चतुर्वेदी जी का देहावसान हुआ।

जयशंकर 'प्रसाद'

जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी की छायावादी कविता के प्रकाश-स्तम्भ हैं। उनका जन्म सं० १९४६ (सन् १८८९ ई०) में काशी के एक संभ्रान्त वैश्य परिवार में हुआ था। विद्यालय की अपेक्षा घर पर ही

उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेज़ी का विशेष अध्ययन किया। पिता की मृत्यु हो जाने पर बचपन में ही उन्हें बड़े भाई के साथ व्यापार कार्य में लगना पड़ा। शीघ्र ही बड़े भाई भी उन्हें छोड़कर इस संसार से चल बसे। परिवार और व्यवसाय की समस्त कठिनाइयाँ अब प्रसाद को अकेले ही झेलनी पड़ीं। उन्हें आर्थिक संकट का कठिन सामना करना पड़ा किन्तु साहस के साथ प्रसाद जी सभी आपत्तियाँ झेल गए। परिवार को लदे हुए ऋण से मुक्त किया।

प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास सभी का सृजन किया। उनके सभी प्रयोग सफल हैं। उनमें काव्य-प्रतिभा का स्फुरण बाल्यावस्था से ही हो गया था। सन् १९०६-७ तक आते-आते इनकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। उनकी रचनाओं में अतीत भारत का गौरवपूर्ण सांस्कृतिक वैभव व्यक्त होता है; नवीन जागरण का सन्देश मिलता है।

रचनाएँ

कविता—काननकुसुम, झरना, आँसू, लहर, महाराणा का महत्त्व, और कामायनी (महाकाव्य)।

नाटक—सज्जन, विशाख, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, एक घूंट (एकांकी), कामना, (भावनाट्य)

उपन्यास—कंकाल, तितली, इरावती (अधूरा ऐतिहासिक उपन्यास)।

काव्य-सौष्ठव :

प्रसाद को जीवन के विविध दुःख-सुखात्मक पक्षों की गहन अनुभूति थी। उनके काव्य में मानव-हृदय का मार्मिक रूप व्यक्त हुआ है। उनका व्यक्तित्व अतिशय भावुक था। अतएव उनकी कविताओं में प्रेम, वेदना एवं करुणा के, रोमानी भावुकता से उपेत चित्र मिलते हैं। उनकी कविता मानव की सूक्ष्म अन्तःवृत्तियों के रहस्य का चित्रण करती है। उसमें स्थूल वर्णन को महत्त्व नहीं मिलता, किन्तु उसका सूक्ष्मभावना-सुलभ सौन्दर्य अप्रतिम होता है। प्रसाद के प्रकृति-चित्रण का भी

अपना मौलिक सौन्दर्य है। प्रकृति में उन्हें असीम सत्ता की झलक मिलती है।

प्रसाद के काव्य-चिन्तन में भावुकता के साथ-साथ दार्शनिकता का भी मणि-कांचन-योग रहता है। इससे काव्य में उदात्तता का समावेश हुआ है। उनके काव्य चिन्तन में मनोवैज्ञानिकता भी पाई जाती है। अशरीरी और अमूर्त भावों को विषय बनाकर काव्य-रचना करते हुए प्रसाद ने हिन्दी कविता को एक नयी दिशा दी। 'कामायनी' का लज्जा सर्ग ऐसे काव्य-प्रयोग का एक सफल उदाहरण है। वस्तु, प्रकृति तथा नारी के केवल बाह्य सौन्दर्य को छोड़कर वे सूक्ष्म सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के प्रति उन्मुख हुए।

भाषा-शैली :

प्रसाद की कविताएँ संस्कृतगर्भित खड़ी बोली में ही अधिकांशत: रचित हैं। उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक खड़ी बोली के दर्शन होते हैं। उनकी भाषा में प्रसाद गुण विशेष रूप से उपलब्ध है। माधुर्य गुण की भी प्रचुरता मिलती है। उनकी कतिपय उद्‌बोधनपूर्ण कविताओं में ओज गुण भी प्राप्त होता है। उनकी भाषा में लक्षणा-व्यंजना का सौन्दर्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद ने छन्दों के नये-नये प्रयोग भी किए हैं। उनकी छन्द-योजना में संगीतात्मकता की प्रबल शक्ति दृष्टिगत होती है। भाषा द्वारा शब्दचित्र अवतरित करने में प्रसाद को अभूतपूर्व सफलता मिली है। इनकी काव्य-शैली में गीत-तत्त्व की प्रधानता है; अभिव्यंजकता का अनुपम सौन्दर्य मिलता है। भाषा में सांकेतिकता का गुण भी बहुत अधिक है। कहीं-कहीं अतिशय सांकेतिकता के कारण दुरूहता भी आ गयी है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि निराला का जन्म उन्नाव जिले के गढ़कोला ग्राम में हुआ। आपकी आरम्भिक शिक्षा बंगाली माध्यम से हुई। राज-परिवार की ओर से आपको संगीत की शिक्षा भी मिली। मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण

होने के बाद निराला आगे नहीं पढ़े बल्कि घर पर ही बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। १५ वर्ष की अवस्था में विवाह होने के पश्चात् आप हिन्दी से परिचित हुए। तभी से आपने हिन्दी में काव्य-रचना प्रारम्भ की। इस बीच एक-एक कर आप के पिता, पत्नी तथा पुत्री की मृत्यु हो गई। इससे इन्हें अत्यन्त गहरा अघात पहुंचा। सम्भवतः इन्हीं दुःखों के आघात से अपने अन्तिम वर्षों में निराला जी विक्षिप्तप्राय हो गये थे।

निराला का समस्त जीवन दुःखों तथा कष्टों से पूर्ण रहा, परन्तु उन्होंने कभी हार नहीं मानी। एक अजेय योद्धा की भाँति परिस्थितियों से लड़ते हुए वे उम्र-भर उन समस्त व्यवस्थाओं से जूझते रहे जो उनकी दृष्टि में अन्यायपूर्ण थीं। निराला काव्य-दर्शन अद्वैत भक्ति-दर्शन से प्रभावित एवं संचालित है। प्रकृति के विषय में रहस्यवादी दृष्टिकोण रखने के कारण उनकी रचनाओं में कई प्रकार की विशेषताएँ आ गई हैं। उनकी कविताएँ केवल वस्तु वर्णन तक ही सीमित न रहकर भौतिक सीमाओं से परे ईश्वरीय सौन्दर्य को छूती हैं। एक चरम सत्ता से साक्षात्कार के सुख का हल्का-सा आभास उनकी समस्त काव्य-कृतियों में विद्यमान है। वे साधना के उस स्तर पर पहुंच गए थे जहाँ साधक तथा साध्य में कोई अन्तर शेष नहीं रह जाता।

निराला की श्रेष्ठतम काव्य-कृति 'राम की शक्ति-पूजा' है। 'राम की शक्ति-पूजा' आधुनिक युग का वह वीर काव्य है जिसमें राम, रावण तथा शक्ति के प्रतीक से आधुनिक मानव के उद्वेग, निराशा, मनोव्यथा तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रांकन किया गया है। संघर्ष से घबराये हुए राम की निराशा आधुनिक व्यक्ति के हताश प्रयत्नों का सही प्रतिनिधित्व करती है। आत्मसंयम द्वारा जागृत मनोबल से प्राप्त की गई विजय भारतीय संस्कृति के उन श्रेष्ठ आदर्शों के अनुकूल है जो मूलतः सत् की असत् पर विजय की प्रेरणा देते हैं। मानवी आदर्शों की महत्ता का द्योतक यह वीर-काव्य शैली तथा भाषा की दृष्टि से छायावादी कविता का सर्वश्रेष्ठ उपहार है।

निराला के व्यक्तिगत जीवन की कटुताएँ उन्हें चिड़चिड़ा बनाने

की अपेक्षा मानवीय संवेदना से और भी आप्लावित कर गई। हिन्दी के इस अमृत-पुत्र की मृत्यु घोर कष्ट सहकर हुई। परन्तु निराला की प्रतिभा विषम आर्थिक संकटों में भी कुण्ठित नहीं हुई। निराला का जीवन संघर्ष की एक अटूट कथा है। उनकी मौलिक प्रतिभा न केवल काव्य अपितु आलोचना, निबन्ध तथा उपन्यास के क्षेत्र में भी मुखरित हुई।

उनकी मुख्यकाव्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं :—

'तुलसीदास', 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अणिमा', 'गीत', 'गुँजन' आदि।

सुमित्रानन्दन पन्त

जीवन परिचय :

सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी काव्य-धारा के एक प्रमुख कवि हैं। इनका जन्म सन् १९०० ई० में अलमोड़ा के कौसानी नामक स्थान में हुआ। प्रसव के कुछ घन्टे के बाद ही उनकी माता का देहावसान हो गया। पिता गंगादत्त ने एक भावुकतापूर्ण वातावरण में उनका पालन-पोषण किया। पन्त जी का आरम्भिक नाम गोसाईंदत्त पन्त था। बड़े होने पर उन्होंने बदलकर स्वयं ही अपना नाम सुमित्रानन्दन पन्त रख लिया। बाल्यावस्था से ही पन्त जी अत्यंत एकांत-प्रिय और शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी प्रकृति अत्यधिक कोमल थी।

पन्त जी ने सन् १९१६ ई० में मिडिल की परीक्षा पास की। वाराणसी के जयनारायण स्कूल से उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ दिनों तक प्रयाग के मेयो कॉलेज के भी विद्यार्थी रहे। परन्तु शीघ्र ही गान्धी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित हुए। कालेज त्यागकर इस संग्राम में वे भी उतर आए। वे अविवाहित ही रहे एवं स्वाध्याय में निरन्तर संलग्न रहे। बाल्यावस्था से ही काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए और एक असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया।

रचनाएँ

कविता :—ग्रंथि, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, युग-पथ, मधुज्वाल, अतिमा, चिदम्बरा कला और बूढ़ा चाँद आदि।

नाटक—ज्योत्स्ना (भावनाट्य), शिल्पी आदि।

उपन्यास—हार।

कहानी—पाँच कहानियाँ।

काव्य-सौष्ठव :

पन्त जी कोमल भावनाओं के कवि माने जाते हैं। उनकी कविताएँ भावुकता से सिक्त होती हैं। उनकी कल्पना-दृष्टि सूक्ष्म सौन्दर्य को देखने में समर्थ है। प्रकृति-सौन्दर्य-चित्रण एवं नारी हृदय की अनुभूतियों के चित्रण में कवि के कवित्व का विशेष प्रवाह लक्षित होता है। तथापि युग-चेतना के साथ-साथ उनके सौन्दर्य-बोध के नये-नये विकास-चरण भी दृष्टिगत होते हैं। प्रारम्भ में छायावादी काव्य-धारा से प्रभावित होकर उन्होंने प्रकृतिप्रधान और मानव की आदिम वृत्तियों के स्पन्दन से सिक्त कविताएँ कीं। बाद में युग की प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव में आकर 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' सदृश प्रगतिवादी काव्य-रचना की। उत्तर काल में वे दार्शनिक चिन्तन से प्रभावित काव्य-सृजन की ओर अभिमुख हुए। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'अतिमा' आदि ऐसे ही काव्य-संग्रह हैं। गान्धीदर्शन एवं अरविन्द के सिद्धान्तों ने पन्त के मानवतावादी एवं आध्यात्मिक चिन्तन को दूर तक प्रभावित किया है।

भाषा-शैली :

पन्त जी की काव्य-भाषा मूलतः कोमलावृत्ति-प्रधान है। उसमें मधुर गुण का ही विशेष संचार मिलता है। कोमलकान्त पदावली के निर्माण के आग्रह के कारण उन्होंने कहीं-कहीं लिंग-परिवर्तन भी कर दिया है। वर्ण-मैत्री आदि के द्वारा ध्वनि-चित्रों का सुन्दर निर्माण

करते हैं। इस प्रकार ध्वन्यात्मकता एवं संगीतात्मकता उनके भाषा-प्रयोग की अन्यतम विशेषता है। वे स्वयं यह लिखते हैं कि 'कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता होती है।" (पल्लव : भूमिका) उनकी भाषा में एक प्रकार की सहज मिठास मिलती है। इससे भाव में गत्यात्मक सौन्दर्य का विधान होता है। भाषा को शक्तिशाली बनाने के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का भी चारु प्रयोग किया है। शब्द-माधुर्य की दृष्टि से वे भाषा के अन्यतम शिल्पी माने जाते हैं। उन्होंने उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकार ही विशेष अपनाए हैं। विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण का प्रचुर प्रयोग किया है। यह सभी लक्षणा पर आधारित अलंकार हैं। छन्द के प्रति भी उनका अत्यधिक आग्रह रहता है। काव्य-रचना के लिए छन्द को वे अनिवार्य मानते हैं। "कविता हमारे प्राणों का संगीत है और छन्द हृदयकम्पन, इसीलिए छन्द के स्वरैक्य पर ही मैंने सदैव ध्यान दिया है।" (पल्लव : भूमिका)

महादेवी वर्मा

महादेवी का जन्म फर्रुखाबाद में सन् १९०७ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा था। वे बड़े गम्भीर और अध्ययनशील स्वभाव के व्यक्ति थे। महादेवी की अध्ययनशील प्रवृत्ति पर पिता का विशेष प्रभाव पड़ा। माता की स्नेहमयी छाया ने इनके मानस को स्निग्ध, सहानुभूतिपूर्ण और आर्द्र बना दिया।

संस्कृत में एम० ए० की परीक्षा पास करने के उपरान्त महादेवी वर्मा ने प्रयाग महिला विद्यापीठ में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। इस समय भी वे इसी विद्यापीठ से सम्बन्धित हैं।

महादेवी वर्मा छायावादी काव्य-युग की एक प्रधान लेखिका हैं। वे काव्य के क्षेत्र में रहस्यवादी हैं। गद्य-रचना में उनकी प्रवृत्ति यथार्थवादी होती है। उसमें उत्पीड़ित समाज के प्रति सहानुभूतिपूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है; उसमें उनके जीवन की कारुणिक दशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

रचनाएँ :

महादेवी वर्मा कृत निम्नलिखित रचनाएँ हैं :—

कविता—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा (पूर्व चारों संग्रहों का एक संग्रह), दीपशिखा और सप्तपर्णा (अनूदित काव्य-संग्रह)।

गद्य :—शृंखला की कड़ियाँ, अतीत के चलचित्र, पथ के साथी, क्षणदा, विवेचनात्मक गद्य आदि।

काव्य-सौष्ठव :

महादेवी की कविता में प्रेम, करुणा और वेदना की गहन अनुभूति-सिक्त अभिव्यक्ति मिलती है। बौद्ध-धर्म के प्रभाव ने इनके काव्य में वेदना की तीव्रता भर दी है। उनके दुख:वाद में मानव-आत्मा की विस्तृत अनुभूति का बीज निहित रहता है। उनके व्यक्तित्व का स्वरूप है—"मैं नीर भरी दुख की बदली···"। फलत: उनकी कविता में पीड़ा का घनीभूत रूप उभरता है। प्रकृति के चित्ताकर्षक रूपों को भी इनके काव्य में अनुपम छटा लक्षित होती है। दार्शनिकता और रहस्यवाद के विशेष भाव उनकी कविता को गरिमामण्डित करते हैं। इनके गद्य-साहित्य में नारी के प्रति असीम सहानुभूति मिलती है। उसमें सामाजिक उन्नति का सीधा सदेन्श रहता है।

भाषा शैली :

महादेवी की भाषा संस्कृत-गर्भित खड़ी बोली है। भाषा प्रांजल एवं संगीतात्मक होती है। महादेवी में शब्द-चित्र उतारने की विशेष क्षमता है। शैली गीति-प्रधान होती है। उसमें प्रसाद और माधुर्य गुणों का विशेष सन्निवेश रहता है।

काव्य-चिन्तन का मूल-स्वर :

महादेवी की यह मान्यता है कि विश्व-भर की मानवता एक ही जीवात्मा का प्रतीक है। परमात्मा के विभिन्न उपास्य-रूप एक ही अनन्त

शक्ति के विविध रूप हैं। कवयित्री ने वेदना के रूप में मानव और अनन्त शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया है।

सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म १६०४ ई० में, प्रयाग (उत्तर प्रदेश) के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। सुभद्रा कुमारी में बचपन से ही काव्य के प्रति आकर्षण था।

इनका विवाह खण्डवा (मध्यप्रदेश) के ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ हुआ। विवाह होते ही सुभद्रा के जीवन में नया मोड़ आया। ये स्वतंत्रता आन्दोलन के दिन थे। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन का सुभद्राजी पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनकी भावनाओं का प्रवाह काव्य पंक्तियों के रूप में फूट पड़ा। पर वे कविता लिखने तक ही सीमित नहीं रहीं, उन्होंने सक्रिय राजनीति में भाग लेना भी प्रारंभ किया और जेल-जीवन की यातनाएँ भी खूब सहीं। पर इन यातनाओं से उनकी भावनाएं दबने की अपेक्षा और भी ओजस्विनी हो उठीं और बलिदान-शौर्य के ऐसे चित्र अंकित हुए, जिन्होंने जन-मन को जाग्रत करने में अभूतपूर्व योगदान किया।

इनके काव्य में नारी सुलभ वात्सल्य और ममता के अनूठे चित्र अंकित हैं। परिवारिक जीवन की मधुर व्यंजना और नारी-मन की कोमल भावनाओं के साथ-साथ, उनके काव्य में एक वीरांगना का शौर्य और ओज भी मुखर है। यह उस समय की परिस्थितियों का तकाजा भी था।

सुभद्रा जी की भाषा सीधी-सादी, सरल और स्वाभाविक है। आत्मानुभूति को स्वच्छ और स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करना सुभद्राकुमारी चौहान की विशेषता है। 'मुकुल' इनका प्रसिद्ध काव्य संकलन है।

काव्य रचना के साथ-साथ सुभद्रा जी ने कहानियाँ भी लिखी हैं। 'सीधे-सादे चित्र', 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

'मुकुल' काव्य संकलन पर उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से 'सेक्सरिया पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। स्वतंत्रता से पूर्व जब कांग्रेस ने असेम्बलियों के चुनाव लड़े थे तो वे मध्य प्रान्त की असेम्बली की सदस्या भी चुनी गई थीं।

अपनी जन-जागरण करने वाली रचनाओं में उन्होंने ऐसे ओजस्वी भाव संजोए हैं, जो राष्ट्र की मोह-निद्रा को भंग कर सकने में समर्थ थे। उनकी 'झाँसी की रानी' नामक लम्बी कविता इसी कोटि की है।

वात्सल्य के चित्रण में भी वे बेजोड़ हैं। दाम्पत्य प्रेम के भी स्वच्छ चित्र उन्होंने अंकित किए हैं। उनकी भाषा सरल होने पर भी ओजस्विनी और प्रवाहमयी है। ओज, प्रसाद और माधुर्य—इन तीनों गुणों का प्रशंसनीय ऐक्य हमें सुभद्राजी के काव्य में दृष्टिगोचर होता है।

उनकी कविता सरल-सहज और आन्तरिकता से सम्पन्न है। यही कारण है कि उसकी पहुंच सीधे हृदय और प्राणों तक हो जाती है। वे उन भारतीय महिलाओं में से हैं जिन्होंने भारतीय नारी के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। सन १९४७ ई० में एक मोटर दुर्घटना में उनका देहान्त हो गया।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' का जन्म सं० १९६५ वि० में मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था। पटना विश्वविद्यालय से आपने बी० ए० आनर्स की परीक्षा पास की। मुजफ्फरपुर के एक स्थानीय कॉलेज में बहुत समय तक आपने अध्ययन-कार्य किया। देश के राजनीतिक आन्दोलन में आपका सराहनीय योगदान रहा है। अपनी ओजस्वी काव्य-वाणी द्वारा उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम के लिए जनता को जगाया है। आजादी के बाद वे कुछ काल तक राजसभा के सदस्य पद पर शोभित रहे। भागलपुर विश्वविद्यालय में उपकुलपति भी रहे। आजकल भारत सरकार द्वारा गठित हिन्दी सलाहकार समिति के एक योग्य पदाधिकारी हैं।

रचनाएँ :

इनकी रचनाएँ कविता, आलोचना, निबन्ध तथा बाल-साहित्य सम्बन्धी हैं :—

कविता—कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, द्वन्द्वगीत, हुंकार, रेणुका, रसवन्ती आदि।

गद्य—संस्कृति के चार अध्याय, मिट्टी की ओर। इन्होंने कई स्फुट आलोचनात्मक निबन्ध भी लिखे हैं, जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

काव्य-सौष्ठव :

दिनकर का काव्य क्रान्तिकारी भावनाओं से भरा हुआ है। उसमें संघर्षरत नव-युग-निर्माण में लगे हुए भारत की आत्मा का स्वर मुखरित हुआ है। उसमें प्रगतिवादी विचारधारा के अनुरूप शोषण का विरोध मिलता है, पीड़ित मनुष्य के प्रति सहानुभूति लक्षित होती है। उनकी रचनाओं में ओज का आधिक्य रहता है। 'हुंकार' और 'सामधेनी' उनकी ओजपूर्ण रचनाओं का संकलन है।

भाषा-शैली :

दिनकर की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है। प्रायः परिष्कृत हिन्दी के प्रयोग का ही उन्होंने प्रयास किया है। उसे व्याकरणसम्मत रखा है। किन्तु उर्दू के शब्दों का भी वे यत्र-तत्र प्रयोग करते हैं, पर काव्य-चारुता के उत्कर्षक को ही दृष्टिपथ में रखकर उन्होंने प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों शैलियों में काव्य-रचना की है। विशेषणों के सार्थक चुनाव के कारण उनकी अभिव्यक्ति अधिक सुन्दर हो गयी है।

हरिवंशराय 'बच्चन'

बच्चन का जन्म सन् १९०७ ई० में प्रयाग के एक साधारण परिवार में हुआ। वे बचपन से ही अत्यन्त परिश्रमी और उत्साही रहे हैं पैतृक सम्पत्ति के रूप में उन्हें माता-पिता से अध्ययनशीलता का गुण मिला। उनकी प्रारंभिक शिक्षा प्रयाग में कायस्थ पाठशाला में हुई। तत्पश्चत् वे कॉलेज में प्रविष्ट हुए और १९३० के असहयोग

आन्दोलन में उन्होंने एम० ए० की पढ़ाई अधूरी छोड़ दी पर राजनीति में सक्रिय भाग न ले सके।

कुछ दिन 'चाँद' मासिक और 'मदारी' हास्य पाक्षिक में काम किया। १९३२ में वे 'पायनियर' दैनिक के संवाददाता बने। पर इस नौकरी को भी छोड़ कर उन्होंने एम० ए० की पढ़ाई को पूरा करने का निश्चय किया। १९३६ में उन की प्रथम पत्नी श्यामाजी का देहान्त हो गया। कवि-हृदय इस आघात में मौन-स्तब्ध-सा हो गया। उनका दूसरा विवाह श्रीमती तेजी से सम्पन्न हुआ।

'मधुशाला' की रचना बच्चन ने १९३३-३४ में कर ली थी। 'मधुशाला' ने बच्चन को हिन्दी का लोकप्रिय कवि बना दिया। 'मधुशाला' और 'बच्चन' एक दूसरे के पर्यायवाची से बन गए। 'मधुशाला' के अतिरिक्त बच्चन के दो दर्जन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त बच्चन ने उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद, रूसी कविताओं का हिन्दी अनुवाद, शेक्सपीयर के 'हैमलेट' 'मैकबेथ' और 'ओथेलो' का मुक्त छन्द में हिन्दी अनुवाद, गीता का अवधी एवं खड़ी बोली कविता में अलग-अलग अनुवाद भी किया है। यद्यपि बच्चन की ख्याति 'कवि' के रूप में ही है पर पिछले वर्षों में उन्होंने अपनी आत्मकथा लिख कर गद्य के क्षेत्र में भी प्रभूत ख्याति अर्जित की है। इस कृति—क्या भूलूं, क्या याद करने भाग-१ तथा 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर' भाग-२ का हिन्दी जगत ने दिल खोलकर स्वागत किया है।

बच्चन की लोकप्रिय रचना 'मधुशाला' की अब तक डेढ़ लाख के लगभग प्रतियां बिक चुकी हैं। आज भी कवि सम्मेलनों में बच्चन को देखकर जब श्रोता 'मधुशाला' सुनने की मांग करते हैं तो कवि की यह भविष्यवाणी कि

"और पुरानी होकर मेरी
और न शीली मधशाला।

तथा "कभी न कण भर खाली होगा
लाख पिएँ, दो लाख पिएँ।"

कितनी सच होती मालूम पड़ती है।

बाद में बच्चन इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में अंग्रेजी प्राध्यापक नियुक्त हुए। कैम्ब्रिज में उन्होंने शोध कार्य करके डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी अधिकारी के पद पर कार्य किया। इस के बाद राज्यसभा के मनोनीत सदस्य भी रहे।

श्री बच्चन को साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला है। इसके अतिरिक्त रूस का 'लोटस पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ है।

आरसीप्रसाद सिंह

आरसीप्रसाद सिंह का जन्म १९ अगस्त, १९११ ई० को एरौत (दरभंगा) में हुआ। अध्ययन के पश्चात् १९४८ से १९५१ तक कोशी कॉलेज, खगड़िया में अध्यापन कार्य करते रहे। तत्पश्चात् कुछ वर्ष आकाशवाणी में हिन्दी कार्यक्रम के आयोजक रहे।

बिहार प्रदेश के सुकवियों में आरसीप्रसाद सिंह का नाम काफी ऊँचा है। वे सुकवि के नाते तो सबके आदर-सम्मान के भाजन हैं ही, अपने सरल, निश्छल स्वभाव और गुटबन्दी से दूर रहने की प्रवृत्ति के कारण भी वे सर्वत्र श्रद्धास्पद माने जाते हैं। 'माधुरी' में आप की रचनाएँ निरन्तर समादर के साथ प्रकाशित होती रही हैं। आपने सूक्ष्म भावबोध, हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना और सुधी कृतिकार होने के नाते 'छायावाद' के तृतीय उत्थान के कवियों में गण्य-मान्य स्थान प्राप्त कर लिया है।

आपके काव्य में प्रकृति-वर्णन में सूक्ष्मता, चित्रात्मकता एवं कलात्मकता होती है। अन्तरतम की पीड़ा को आप बड़ी मार्मिकता के साथ वाणी देते हैं। आप वादों और विवादों से दूर रहकर केवल साहित्य-साधना में विश्वास रखते हैं। आपका कवि व्यक्तित्व स्वच्छन्द और विमुक्त है। आपका काव्य सरल, मधुर, और संगीतात्मकता लिए हुए है। आपकी भाषा में संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ हुआ है। प्रकृति का मानवीकरण करके आप उसे विराट चेतना से संयोजित कर देते हैं और वह भी अपने सारे रहस्य

आपके सामने प्रकट कर देती है। आपके काव्य में अलंकार-योजना बड़ी सहजता के साथ सम्पन्न हुई हैं। जटिलता से मुक्त आपकी भाषा में खूब प्रवाह है।

कुछ आलोचकों का कहना है कि प्रकृति के रहस्यात्मक चित्रांकन में आप सुमित्रानन्दन पन्त से प्रभावित हैं। आपने बालकों के लिए भी कुछ कविताएं लिखी हैं जो 'चन्दामामा', 'चित्रों में लोरियाँ' आदि में संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त आपकी ड़ेढ़ दर्जन अन्य कृतियां भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने 'माटिर दीप' नाम से एक काव्यकृति मैथिली भाषा में रची है।

आपकी कृतियां हैं :—आजकल, कलापी, संचयिता, आरसी, पंच पल्लव, खोटा सिक्का, जीवन और यौवन, कालरात्रि, चंदामामा, नयी दिशा, पाँचजन्य, एक प्याला, आंधी के पत्ते, चित्रों में लोरियां ओनामासी, नंददास, प्रेमगीत ।